

## अस्वाध्यायिक

निम्नलिखित बत्तीस अस्वाध्याय के कारणों को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए।

### आकाश संबंधी 10 अस्वाध्याय

क्र.	नाम	आकाश संबंधी 10 अस्वाध्याय	काल मर्यादा
1.	उल्कापात	‘टूटता हुआ तारा, पीछे रेखायुक्त प्रकाश’	एक प्रहर
2.	दिग्दाह	दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग सी लगी है	एक प्रहर
3.	गर्जित	अकाल में मेघ गर्जना हो तो	दो प्रहर
4.	विद्युत	अकाल में बिजली चमके तो	एक प्रहर
5.	निर्घात	बिजली कड़के तो	आठ प्रहर
6.	यूपक	शुक्ल पक्ष की 1-2-3 की रात (पक्खी के बाद की तीन रात्रियाँ समझना)	प्रहर रात्रि तक
7.	यक्षादीप्त	आकाश में एक दिशा में रूक-रूक के देवता कृत विद्युत के समान प्रकाश होना।	जब तक दिखाई दे
8-9.	धूमिका-मिहिका-काली और सफेद धूँअर		जब तक रहे
10.	रज उद्घात	आकाश मण्डल धूली से आच्छादित नक्षत्र 28 होते हैं, उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक 9 नक्षत्र वर्षा के गिने गए हैं। इनमें होने वाली मेघ गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय काल नहीं गिना गया है।	जब तक रहे

( श्रीमत् स्थानांगसूत्र, स्थान 10, उ.1 )

### औदारिक सम्बन्धी अस्वाध्यायिक

11-13.	हड्डी, रक्त मांस	ये तिर्यञ्च के 60 हाथ के भीतर हो तो मनुष्य के 100 हाथ के भीतर हो तो मनुष्य की हड्डी 100 हाथ के भीतर यदि जली या धुली न हो तो	3 प्रहर 8 प्रहर 12 वर्ष तक
( आवश्यक निर्युक्ति पृष्ठ 217 )			
14.	अशुचि	दुर्गंध आवे या दिखाई दे	तब तक
15.	श्मशान भूमि	100 हाथ के भीतर हो तो	स्वाध्याय नहीं करें

16.	चंद्र ग्रहण	खंड ग्रहण, पूर्ण ग्रहण हो तो क्रमशः	8 प्रहर, 12 प्रहर
17.	सूर्य ग्रहण	खंड ग्रहण, पूर्ण ग्रहण हो तो क्रमशः	12 प्रहर, 16 प्रहर
18.	पतन	राजा या राज्याधिकारी के निधन होने पर जब तक विक्षोभ रहे	तब तक
19.	राजव्युद्ग्रह	युद्ध स्थान के निकट	युद्धजनित क्षोभ रहे तब तक
20.	शव	पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो	जब तक रहे
21-24.	चार महापूर्णिमा	1. आषाढी पूर्णिमा, 2. अश्विनी पूर्णिमा 3. कार्तिकी पूर्णिमा, 4. चैत्र की पूर्णिमा	दिन-रात दिन-रात
25-28.	चार प्रतिपदा	इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा	दिन-रात
29-32.	संधि समय-	सूर्योदय-सूर्यास्त के पूर्व व पश्चात् आधा-आधा मुहूर्त संधि समय-मध्याह्न और मध्यरात्रि 1-1 मुहूर्त	

#### विशेष नोट-

- ❁ बालक-बालिका के जन्म के क्रमशः सात और आठ दिन तक 100 हाथ के भीतर अस्वाध्याय माना जाता है।
- ❁ गायदि के जर गिरती रहे तब तक, उसके गिरने के बाद तीन प्रहर तक।
- ❁ **कालिक सूत्र**-11 अंग, 4 छेद तथा मूलसूत्र में एक उत्तराध्ययन सूत्र। उपांग सूत्र में जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति, निरयावलिया पंचक (निरयावलिया, कप्पवर्डीसिया, पुप्फिया, पुप्फचुलिया, वण्हदसा)। शेष सभी उत्कालिक सूत्र हैं। किन्तु 32वां आवश्यक सूत्र नोकालिक नोउत्कालिक सूत्र है।  
कालिक सूत्र का स्वाध्याय दिन एवं रात्रि के प्रथम एवं अंतिम प्रहर में एवं उत्कालिक सूत्र का स्वाध्याय किसी भी समय अस्वाध्याय के कारणों को टालकर करना चाहिए। उत्काल में कालिक सूत्र की वाचना 9 गाथा से अधिक नहीं दी जा सकती।
- ❁ स्वाध्याय का वाचन करने के पश्चात् 'आगमे तिविहे' का पाठ बोलें।
- ❁ एक प्रहर लगभग 3 घंटे का होता है।
- ❁ आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र का काल तारीख के हिसाब से 21 जून से 25 अक्टूबर के लगभग होता है।



## सूत्र विभाग

### 1. दशवैकालिक एक परिचय

32 आगमों के वर्गीकरण के समय दशवैकालिक को चार मूल सूत्रों में सम्मिलित किया गया। क्योंकि इसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप इन चार (आत्मा के) मूल गुणों का पोषण होता है तथा श्रामण्यता की नींव मजबूत होने के कारण इसे मूल सूत्र कहा गया है। यह आगम “अंगबाह्य” (अनंगप्रविष्ट श्रुत) एवं उत्कालिक सूत्र है। इसका वाचन अस्वाध्याय समय को टालकर (छोड़कर) सभी प्रहरों में किया जा सकता है।

अपराह्न में आरम्भ किए इस आगम के दस अध्ययन निबद्ध (संकलन) करते- करते विकाल (संध्या समय) हो जाने से इसका नाम “दशवैकालिक” रखा गया।

इस सूत्र के रचयिता भ. महावीर के शासनवर्ती चतुर्थ पट्टधर श्रुत केवली आचार्य शय्यंभव थे। आचार्य प्रभव ने ब्राह्मण पुत्र शय्यंभव को अपने ज्ञान से जिनशासन की प्रभावना करने वाला जाना एवं उसे प्रेरित करने हेतु अपने दो शिष्यों को उस यज्ञशाला में भेजा, जहाँ शय्यंभव थे। शय्यंभव ने श्रमणों का घोर अपमान किया। श्रमणों ने कहा- ‘अहो कष्टं, अहो कष्टं, तत्त्वं विज्ञायते नहि’ अहो! खेद की बात है तत्त्व नहीं जाना जा रहा है। शय्यंभव ने सोचा- अरे! ये श्रमण क्या बोल रहे हैं? इनकी बात असत्य नहीं हो सकती। वे हाथ में तलवार लेकर अपने अध्यापक के पास पहुँचे और कहा-बताओ! तत्त्व का स्वरूप क्या है? नहीं बताओगे तो तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर दूँगा। तलवार देखकर अध्यापक काँप उठे और कहा- अरिहंत प्ररूपित धर्म ही यथार्थ धर्म और तत्त्व है।

वे आचार्य प्रभव के पास पहुँचे और उनकी वाणी से बोधित होकर दीक्षित हो गये। आचार्य के पास उन्होंने 14 पूर्वों का ज्ञान प्राप्त किया और श्रुतधर परम्पराओं के द्वितीय श्रुतधर हुए।

जब शय्यंभव दीक्षित हुए तब उनकी पत्नी गर्भवती थी। समय के साथ पुत्र का जन्म हुआ और उसका नाम “मनक” रखा गया।

जब बालक मनक आठ वर्ष का हुआ तब उसने माँ से अपने पिता के बारे में पूछा। माँ ने सारी घटना सुना दी-तेरे पिता जैन मुनि बन गए हैं वे

अब जैन संघ के आचार्य हैं, अभी इसी चम्पापुरी नगरी में विचरण कर रहे हैं। माता की अनुमति लेकर 'बालक मनक' पिता (आचार्य श्री) के दर्शनार्थ रवाना हुआ।

रास्ते में मनक को आचार्य के दर्शन हुए। आचार्य के पूछने पर मनक ने अपना परिचय एवं आने का कारण बताया और आचार्य से पूछा- क्या आप आचार्य शय्यंभव को जानते हैं? तब आचार्य ने कहा मैं शय्यंभव का अभिन्न (एक शरीर भूत) मित्र हूँ। मोह न बढ़ जाए इस अपेक्षा से अपना स्पष्ट परिचय नहीं दिया बल्कि इस रूप में अपना परिचय देकर उसे शिष्य रूप में स्वीकार किया। आचार्य ने अपने विशिष्ट ज्ञान से देखा कि यह बालक अल्पायु है। इसके लिए सभी शास्त्रों का अध्ययन करना संभव नहीं है। तब मुनि मनक के लिए द्वादशांग गणिपिटक से दशवैकालिक सूत्र की रचना की।

मुनि मनक छः मास में दशवैकालिक सूत्र को पढ़कर श्रुत और चारित्र की सम्यक् आराधना कर संसार से समाधिपूर्वक आयु पूर्ण कर स्वर्गस्थ हुए। बाद में निर्णय लिया गया कि इस आगम को ज्यों का त्यों ही रखा जाए ताकि यह आगम मुनि मनक जैसे श्रमणों की आराधना का निमित्त बनें। साधक इस सारभूत सूत्र का अध्ययन कर व इसे आत्मसात कर अपनी साधना को सफल बना सके। अतः मोक्षभिलाषी साधकों के लिए दशवैकालिक सूत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

संक्षेप में, इसमें श्रमणाचार के सभी नियमों का सांगोपांग वर्णन किया गया है। जिसका अध्ययन एवं आचरण कर साधक अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करता है।



## 2. दशवैकालिक सूत्र

### पढमं दुमपुष्पियञ्जयणं

इस अध्ययन में सत्य धर्म का स्वरूप व मधुकरी वृत्ति (भ्रमर जीवन) के दृष्टांत के माध्यम से भिक्षु के आहार ग्रहण का स्वरूप प्रतिपादित किया है।

मधुकरी वृत्ति का मूल केन्द्र द्रुम पुष्प होने से इस अध्ययन का नाम “दुम पुष्पिया” (द्रुम पुष्पिका) रखा गया है।

**धम्मो मंगलमुक्कट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।**

**देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥१॥**

**अन्वयार्थ-** अहिंसा=प्राणियों की हिंसा का त्याग करना तथा जीवों की रक्षा करना, संजमो=संयम और तवो=तपरूप धम्मो=श्रुत-चारित्र रूप धर्म, मंगलं=कल्याणकारी और उक्कट्ठं=श्रेष्ठ है। जस्स=जिसका, मणो=मन, सया=सदा, धम्मे=धर्म में लगा रहता है, तं=उसको, देवा=देव, वि=भी, नमंसंति=नमस्कार करते हैं॥१॥

**भावार्थ-** श्रुत-चारित्र रूप धर्म में लीन प्राणी देवों का भी पूज्य बन जाता है।

**जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियई रसं।**

**न य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं॥२॥**

**अन्वयार्थ-** जहा=जिस प्रकार, भमरो= भ्रमर, दुमस्स=वृक्ष के, पुप्फेसु=फूलों में से, रसं=रस को, आवियई=पीता है, य=और, पुप्फं=फूल को, न किलामेइ= पीड़ित नहीं करता, य=और सो=वह भ्रमर, अप्पयं= अपनी आत्मा को, पीणेइ=संतुष्ट कर लेता है॥२॥

**भावार्थ-** जैसे भ्रमर अनेक वृक्षों के फूलों से थोड़ा-थोड़ा रस चूसता है। इस प्रकार वह फूलों को कष्ट नहीं पहुंचाता हुआ अपनी आत्मा को संतुष्ट कर लेता है।

**एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो।**

**विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया॥३॥**

**अन्वयार्थ-** एमेए=इसी प्रकार ये, लोए=लोक में, जे=जो, मुत्ता=द्रव्य भाव परिग्रह से मुक्त, समणा= श्रमण तपस्वी, साहुणो=साधु, संति= हैं वे,

पुष्फेसु=फूलों में, विहंगमा=पक्षियों के, व=समान, दाणभत्तेसणे=दाता द्वारा दिए हुए आहारादि की गवेषणा में, रया=रत रहते हैं॥३॥

**भावार्थ-** साधु, गृहस्थियों को कष्ट न पहुंचाते हुए अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा प्रासुक आहारादि ग्रहण करने में ठीक उसी प्रकार रत रहते हैं, जिस प्रकार भ्रमर पुष्पों में रत रहते हैं।

गुरु महाराज के समक्ष शिष्य प्रतिज्ञा करता है -

**वयं च वित्तिं लब्धामो, न य कोइ उवहम्मई।**

**अहागडेसु रीयंते, पुष्फेसु भमरा जहा॥४॥**

**अन्वयार्थ-** जहा=जिस प्रकार, पुष्फेसु=फूलों में, भमरा=भ्रमर, रीयंते=अपना निर्वाह करते हैं, च=उसी प्रकार, वयं=हम साधु, अहागडेसु=गृहस्थों द्वारा अपने लिए बनाए हुए आहारादि की, वित्तिं=भिक्षा, लब्धामो=ग्रहण करेंगे, य=जिससे, कोइ=किसी जीव को, न उवहम्मई=कष्ट न हो॥४॥

**भावार्थ-** भ्रमर की भांति साधु भी गृहस्थों द्वारा अपने लिए बनाए हुए आहार में से थोड़ा-थोड़ा लेकर अपनी संयम-यात्रा का निर्वाह करते हैं।

**महुकारसमा बुद्धा, जे भवंति अणिसिया।**

**नाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो॥५॥ त्ति बेमि।**

**अन्वयार्थ-** जे=जो, बुद्धा=तत्त्व के जानने वाले हैं और महुकारसमा=भ्रमर के समान, अणिसिया=कुलादि के प्रतिबंध से रहित, भवंति=हैं और नाणापिंडरया=अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा आहारादि लेने में संतुष्ट हैं तथा दंता=इंद्रियों को दमन करने वाले हैं, तेण=इसी से वे, साहुणो=साधु, वुच्चंति=कहलाते हैं॥५॥ त्ति बेमि=जैसा मैंने अपने धर्मोपदेशक धर्माचार्य से सुना है, वैसा मैं कहता हूँ।

**भावार्थ-** जो तत्त्व को जानने वाले हैं, भ्रमर के समान कुलादि के प्रतिबंध से रहित हैं, अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा आहार लेकर अपनी उदरपूर्ति करते हैं और जो इंद्रियों का दमन करते हैं, वे साधु कहलाते हैं।

**॥ प्रथम अध्ययन समाप्त॥**

## बिड़यं सामण्णपुव्वगऽज्झयणं

इस अध्ययन में साधु को संयम में धैर्यवान होने व विषय वासनाओं से चंचल बने चित्त को संयम में स्थिर करने का सुन्दर उपाय बताया है।

श्रमण धर्म का सम्यक् पालन करने से पूर्व काम-विकार का निवारण किया जाता है, यहाँ उसी का वर्णन होने से इस अध्ययन का नाम “सामण्णपुव्वग” (श्रामण्य पूर्वक) रखा गया है।

**कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए।**

**पए पए विसीयंतो, संकप्पस्स वसं गओ?॥१॥**

अन्वयार्थ- जो=जो, कामे=काम=भोगों को, न=नहीं, निवारए=त्यागता है, वह, संकप्पस्स=इच्छाओं के, वसं गओ=वश में होकर, पए पए=पद-पद पर, विसीयंतो=खेदित होकर, सामण्णं=श्रमण धर्म का, कहं नु=किस प्रकार, कुज्जा=पालन कर सकता है॥१॥

भावार्थ- जो इन्द्रियों के विषयों का त्याग नहीं करता, उसकी इच्छाएं हमेशा बढ़ती रहती हैं, उसे कभी सन्तोष नहीं होता। सन्तोष न होने से मानसिक कष्ट होता है, जिससे चारित्र-धर्म की आराधना नहीं हो सकती। अतः सर्वप्रथम इन्द्रियों को वश में करना चाहिए।

**वत्थ-गंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य।**

**अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइ त्ति वुच्चइ॥२॥**

अन्वयार्थ- जे=जो पुरुष, अच्छंदा=पराधीन होने के कारण, वत्थ=वस्त्र, गंधं=गन्ध, अलंकारं=आभूषण, इत्थीओ=स्त्रियों को और सयणाणि=शय्या को, न=नहीं, भुंजंति=भोगता है, से=वह चाइ त्ति=त्यागी, न=नहीं, वुच्चइ=कहा जाता है॥२॥

भावार्थ- जो पुरुष रोग आदि किसी कारण से पराधीन होकर विषयों का सेवन नहीं कर सकता, वह त्यागी नहीं कहलाता, किन्तु अपनी इच्छा से विषयों का त्याग करने वाला ही वास्तव में सच्चा त्यागी कहलाता है।

**जे य कंते पिए भोए, लब्धे विप्पिट्ठ कुव्वई।**

**साहीणे चयई भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चई॥३॥**

अन्वयार्थ- जे=जो पुरुष, लब्धे=प्राप्त हुए, कंते=मनोहर, पिए=प्रिय,



भोए=भोगने योग्य, य=और, साहीणे=स्वाधीन, भोए=भोगों को, पिट्ठी कुव्वई=उदासीनतापूर्वक, चयई=त्याग देता है, से=वह, हु=निश्चय से, चाइ त्ति=त्यागी, वुच्चई=कहलाता है।।3।।

भावार्थ-भोगों की प्राप्ति होने पर भी और भोगों की स्वतंत्रता रहते हुए भी जो भोगों को नहीं भोगता, वही आदर्श त्यागी कहलाता है।

समाए पेहाए परिव्वयंतो, सिया मणो नीसरई बहिद्धा।

न सा महं नो वि अहं पि तीसे, इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं।।४।।

अन्वयार्थ- समाए पेहाए=समभाव पूर्वक, परिव्वयंतो= संयम मार्ग में विचरण करते हुए साधु का, मणो=मन, सिया=कभी, बहिद्धा=संयम से बाहर, नीसरई=निकल जाए, तो सा=वह स्त्री, महं=मेरी, न=नहीं है और, अहं=मैं, पि=भी, तीसे=उसका, नो वि=नहीं हूं, इच्चेव=इस प्रकार विचार कर, ताओ=उस स्त्री पर से, रागं=राग भाव को, विणएज्ज=दूर करे।।4।।

आयावयाही चय सोगमल्लं, कामे कमाही कमियं खु दुक्खं।।

छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं, एवं सुही होहिसि संपराए।।५।।

अन्वयार्थ- आयावयाही=आतापना लो और शरीर को तपस्या से सुखा डालो, सोगमल्लं=सुकुमारता को, चय=त्याग दो, कामे=काम-भोगों को, कमाही=दूर करो, खु=निश्चय ही, दुक्खं= दुःख, कमियं=दूर होगा, दोसं=द्वेष को, छिंदाहि=नष्ट करो, रागं=राग को, विणएज्ज=दूर करो, एवं=ऐसा करने से, संपराए=संसार में, सुही=सुखी, होहिसि=होओगे।।5।।

भावार्थ- पूर्वोक्त गाथा में सूत्रकर्ता ने मनोनिग्रह का अन्तरंग उपाय बतलाया है। अब मनोनिग्रह का बाह्य उपाय बतलाते हुए कहते हैं कि संयम से बाहर जाते हुए मन को वश में करने के लिए शरीर की सुकोमलता का त्याग करके ऋतु अनुसार आतापना लेनी चाहिए, तपस्या करनी चाहिए और राग-द्वेष को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा करने से प्राणी सुखी होता है।

पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं।

नेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे।।६।।

अन्वयार्थ- अगंधणे=अगन्धन नामक, कुले=कुल में, जाया=उत्पन्न हुए सर्प, जलियं=जलती हुई, धूमकेउं=धुआं निकलती हुई, दुरासयं=कठिनाई से सहने योग्य, जोइं=अग्नि में, पक्खंदे=गिर जाते हैं किन्तु, वंतयं=वमन

किए हुए विष को, भोक्तुं=भोगने की, न इच्छंति=इच्छा नहीं करते॥6॥

**भावार्थ-** सती राजमती रथनेमि से कहती है कि अगंधन कुल में उत्पन्न हुए सर्प, अग्नि में जल कर मर जाना तो पसंद करते हैं, किन्तु उगले हुए विष को पुनः पीना नहीं चाहते।

**धिरत्थु ते जसोकामी, जो तं जीवियकारणा।**

**वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे॥७॥**

**अन्वयार्थ-** जसोकामी=हे अपयश के इच्छुक! ते=तुझे, धिरत्थु=धिवकार हो, जो=जो, तं=तू, जीवियकारणा=असंयम रूप जीवन के लिए, वंतं=वमन किए हुए को, आवेउं=पीना, इच्छसि=चाहता है। इसकी अपेक्षा तो, ते=तेरे लिए, मरणं=मर जाना, सेयं=श्रेष्ठ, भवे=है॥7॥

**भावार्थ-** सती राजमती चंचल चित्त बने हुए रथनेमि को संयम में स्थिर करने के लिए उपदेश देती है कि संयम धारण करके असंयम में आना निन्दनीय है। ऐसे असंयम पूर्ण और पतित जीवन की अपेक्षा तो संयमावस्था में मृत्यु हो जाना अच्छा है।

**अहं च भोगरायस्स, तं च सि अंधगवण्हणो।**

**मा कुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर॥८॥**

**अन्वयार्थ-** अहं च=मैं राजमती, भोगरायस्स=भोजराज उग्रसेन की पुत्री हूँ, च=और, तं=तू, अंधगवण्हणो=अन्धकवृष्णि-समुद्रविजय का पुत्र, सि=है, गंधणा कुले=गन्धन कुल में उत्पन्न सर्प के समान, मा होमो=मत हो किन्तु, निहुओ=मन को स्थिर रखकर, संजमं=संयम का, चर=पालन कर॥8॥

**भावार्थ-** राजमती रथनेमि से कहती है कि हम दोनों उच्च कुल में उत्पन्न हुए हैं। अतः उगले हुए विष को पुनः पी जाने वाले गन्धन कुल के साँप के समान नहीं होना चाहिए।

**जइ तं काहिसि भावं, जा जा दच्छसि नारिओ।**

**वायाइद्धो व्व हढो, अट्ठयप्पा भविस्ससि॥९॥**

**अन्वयार्थ-** तं=हे मुनि! तुम, जा-जा=जिन-जिन, नारिओ=स्त्रियों को, दच्छसि=देखोगे, जइ=यदि उन-उन पर, भावं=बुरे भाव, काहिसि=करोगे तो, वायाइद्धो व्व हढो=वायु से प्रेरित हड नामक वनस्पति की भाँति, अट्ठयप्पा=अस्थिर आत्मा वाले, भविस्ससि=हो जाओगे॥9॥

**भावार्थ-** राजमती रथनेमि से कहती है कि हे मुनि! जिस किसी भी स्त्री को देखकर यदि तुम इस प्रकार काम-मोहित हो जाओगे, तो जैसे समुद्र के किनारे खड़ा हुआ हड नाम का वृक्ष हवा के एक झोंके से समुद्र में गिर पड़ता है, वैसे तुम्हारी आत्मा भी उच्च पद से नीचे गिर जाएगी।

**तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाए सुभासियं।  
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ॥१०॥**

**अन्वयार्थ-** सो=वह, रथनेमि, तीसे=उस, संजयाई=संयमवती साध्वी के, सुभासियं=सुभाषित, वयणं=वचन, सोच्चा=सुनकर, धम्मे=धर्म में, संपडिवाइओ=स्थिर हो गया, जहा=जैसे, अंकुसेण=अंकुश से, नागो=हाथी वश में हो जाता है॥१०॥

**भावार्थ-** ब्रह्मचारिणी राजमती के सुन्दर वचन सुनकर रथनेमि धर्म-मार्ग में उसी प्रकार स्थिर हो गए, जिस प्रकार अंकुश से हाथी वश में हो जाता है।

**एवं करेन्ति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।  
विणियट्टन्ति भोगेसु, जहा से पुरिसोत्तिमो॥११॥ त्ति बेमि।**

**अन्वयार्थ-** संबुद्धा=तत्त्वज्ञ, पंडिया=पाप से डरने वाले पण्डित, पवियक्खणा=विचक्षण मनुष्य, एवं=ऐसा ही, करेन्ति=करते हैं अर्थात् भोगेसु=भोगों से, विणियट्टन्ति= निवृत्त हो जाते हैं, जहा=जैसे, से=वह, पुरिसोत्तिमो=पुरुषों में उत्तम रथनेमि भोगों से निवृत्त हो गया॥११॥ त्ति बेमि=पूर्ववत्।

**भावार्थ-** जो विवेकी होते हैं, वे विषय-भोगों के दोषों को जानकर उनका परित्याग उसी प्रकार कर देते हैं, जैसे रथनेमि ने कर दिया।

**॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त॥**

## **तइयं खुडिडयायारकहऽज्झयणं**

जो निर्ग्रन्थ महर्षियों के आचरण करने योग्य नहीं हैं, ऐसे 52 अनाचारों का वर्णन इस अध्ययन में किया गया है। इसी शास्त्र के छठे अध्ययन में विस्तार के साथ श्रमण आचार का वर्णन किया गया है। उस अपेक्षा से संक्षिप्त (अल्प रूप) में अनाचरणीय विषयों का निषेध कर आचार का प्रतिपादन होने से इस अध्ययन का नाम “खुडिडयायार कहा” (क्षुल्लकाचार कथा) रखा गया है।

संजमे सुट्ठयप्पाणं, विप्पमुक्काण ताइणं।  
तेसिमेयमणाइण्णं, निग्गंथाण महेसिणं॥१॥

अन्वयार्थ- संजमे=संयम में, सुट्ठयप्पाणं=भली भाँति स्थिर आत्मा वाले, विप्पमुक्काण=सांसारिक बन्धनों से रहित, ताइणं=छः काय जीवों के रक्षक, तेसिं=उन, निग्गंथाण=परिग्रह रहित, महेसिणं=महर्षियों के, एयं=ये=आगे कहे जाने वाले, अणाइण्णं=अनाचार हैं॥१॥

उद्देसियं कीयगडं, नियागं अभिहडाणि य।  
राइभत्ते सिणाणे य, गंध मल्ले य वीयणे॥२॥

अन्वयार्थ- 1. उद्देसियं=औद्देशिक, 2. कीयगडं=साधु के लिए खरीदा हुआ, 3. नियागं=किसी का आमंत्रण स्वीकार कर उसके घर से लिया हुआ आहार, 4. अभिहडाणि=साधु के लिए सामने लाया हुआ, य=और, 5. राइभत्ते=रात्रि भोजन, य=और, 6. सिणाणे=स्नान, 7. गंध=सुगंधित पदार्थों का सेवन, 8. मल्ले=फूलादि की माला, य=और, 9. वीयणे=पंखादि से हवा लेना॥२॥

सन्निही गिहिमत्ते य, रायपिंडे किमिच्छए।  
संबाहण दंतपहोवणा य, संपुच्छण देहपलोयणा य॥३॥

अन्वयार्थ- 10. सन्निही=घी, गुड़ आदि वस्तुओं का संचय करना, 11. गिहिमत्ते=गृहस्थ के पात्र में भोजन करना, य=और, 12. रायपिंडे=राजपिंड का ग्रहण करना, 13. किमिच्छए='तुमको क्या चाहिए' इस प्रकार याचक से पूछकर जहाँ उसकी इच्छानुसार दान दिया जाता हो, ऐसी दानशाला आदि से आहारादि लेना, 14. संबाहण=मर्दन करना, य=और, 15. दंतपहोवणा=विभूषा के लिए अंगुली आदि से दांत धोना, 16. संपुच्छणा=गृहस्थों से सावद्य कुशल=प्रश्न आदि पूछना, य=और, 17. देहपलोयणा=दर्पण आदि में मुख देखना॥३॥

अट्ठावए य नाली य, छत्तस्स य धारणट्ठाए।  
तेगिच्छं पाहणा पाए, समारंभं च जोइणो॥४॥

अन्वयार्थ- 18. अट्ठावए=जुआ खेलना, य=और, नाली य=चौपड़-पासा शतरंज आदि खेलना, य=और, 19. छत्तस्स धारणट्ठाए=छत्र धारण करना, 20. तेगिच्छं=रोग का इलाज करना, 21. पाए पाहणा=पैरों में जूते आदि पहिना, च=और 22. जोइणो=अग्नि का, समारंभं=आरम्भ करना॥४॥

सेज्जायरपिंडं च, आसंदी पलियंकए।  
गिहंतरनिसेज्जा य, गायस्सुव्वट्टणाणि य॥५॥

अन्वयार्थ- 23. सेज्जायरपिंडं=शय्यातर का आहार लेना, च=और, 24. आसंदी=बेंत आदि के बने हुए आसन पर बैठना, 25. पलियंकए=पलंग पर बैठना, 26. गिहंतरनिसेज्जा=गृहस्थ के घर बैठना या दो घरों के बीच बैठना, य=और, 27. गायस्सुव्वट्टणाणि=मैल उतारने के लिए शरीर पर उबटन करना॥5॥

गिहिणो वेयावडियं, जा य आजीववित्तिया।  
तत्तानिव्वुडभोइत्तं, आउरस्सरणाणि य॥६॥

अन्वयार्थ- 28. गिहिणो=गृहस्थ की, वेयावडियं=वैयावच्च करना अर्थात् उसे आहारादि देना, य=और, जा=जो, 29. आजीववित्तिया=जाति, कुल आदि बताकर आजीविका करना, 30. तत्तानिव्वुडभोइत्तं=जो अच्छी तरह से प्रासुक नहीं हुआ है, ऐसे मिश्र आहार पानी का सेवन करना, य=और, 31. आउरस्सरणाणि=रोग अथवा भूख से पीड़ित होने पर पहले भोगे हुए पदार्थों को याद करना या शरण चाहना॥6॥

मूलए सिंगबेरे य, उच्छुखंडे अणिव्वुडे।  
कंदे मूले य सच्चित्ते, फले बीए य आमए॥७॥

अन्वयार्थ- 32. अणिव्वुडे=सचित्त, मूलए=मूला, य=और, 33. सिंगबेरे=अदरख, 34. उच्छुखंडे=इक्षुखण्ड=गंडेरी, य=और, 35. कंदे=कन्द=वज्रकन्द आदि, 36. सच्चित्ते=सचित्त, मूले=मूल=जड़, 37. फले=फल, आम, नींबू आदि, य=और 38. आमए=सचित्त, बीए=तिलादि बीजों का सेवन करना॥7॥

सोवच्चले सिंधवे लोणे, रुमालोणे य आमए।  
सामुहे पंसुखारे य, कालालोणे य आमए॥८॥

अन्वयार्थ- 39. आमए=सचित्त, सोवच्चले=संचल नमक, 40. सिंधवे लोणे=सैन्धव नमक, 41. रुमालोणे=रोमा नमक, 42. सामुहे=समुद्र का नमक, य=और 43. पंसुखारे=ऊषर नमक, य=और, 44. आमए=सचित्त, कालालोणे=काला नमक का सेवन करना॥8॥

धूवणेत्ति वमणे य, वत्थीकम्म विरेयणे।  
अंजणे दंतवणे य, गायाभंग विभूसणे॥९॥

अन्वयार्थ- 45. धूवणेत्ति=अपने वस्त्र आदि को धूप देकर सुगन्धित करना, य=और, 46. वमणे=औषधि आदि से वमन करना, 47. वत्थीकम्म=मलादि की शुद्धि के लिए बस्ती कर्म करना, 48. विरेयणे=जुलाब लेना, 49. अंजणे=आँखों में अंजन लगाना, य=और, 50. दंतवणे=दतून से दांत साफ करना, मस्सी आदि लगाना, 51. गायाभंग=सहस्रपाक शतपाक आदि तेलों से शरीर की मालिश करना, य=और, 52. विभूसणे=शरीर को विभूषित करना॥९॥

सव्वमेयमणाइण्णं, निग्गंथाण महेसिणं।  
संजमम्मि य जुत्ताणं, लहुभूयविहारिणं॥१०॥

अन्वयार्थ-संजमम्मि=संयम, य=और तप में, जुत्ताणं=लगे हुए, लहुभूयविहारिणं=वायु के समान अप्रतिबद्ध विहार करने वाले, निग्गंथाण=निर्ग्रन्थ, महेसिणं=महर्षियों के, एयं=ये, सव्वं=सभी, अणाइण्णं=अनाचार हैं॥१०॥

पंचासवपरिन्नाया, तिगुत्ता छसु संजया।  
पंचनिग्गहणा धीरा, निग्गंथा उज्जुदंसिणो॥११॥

अन्वयार्थ- पंचासवपरिन्नाया=पाँच आश्रवों के त्यागी, तिगुत्ता=मन, वचन और काय-गुप्ति से युक्त, छसु संजया=छः काय जीवों की रक्षा करने वाले, पंचनिग्गहणा=पाँच इन्द्रियों का निग्रह करने वाले, धीरा=परीषह उपसर्ग सहन करने में धीर, उज्जुदंसिणो=सरल स्वभावी, निग्गंथा=निर्ग्रन्थ होते हैं॥११॥

आयावयंति गिम्हेसु, हेमंतेसु अवंगुत्ता।  
वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया॥१२॥

अन्वयार्थ-सुसमाहिया=प्रशस्त समाधिवंत, संजया=संयमी मुनि, गिम्हेसु=ग्रीष्म ऋतु में, आयावयंति=सूर्य की आतापना लेते हैं, हेमंतेसु=हेमंत ऋतु में, अवंगुत्ता=अल्प वस्त्र या वस्त्र रहित रहते हैं, वासासु=वर्षा ऋतु में, पडिसंलीणा=कछुए की तरह इन्द्रियों को वश में करके रहते हैं॥१२॥

भावार्थ-जिस ऋतु में जिस प्रकार की तपस्या से अधिक कायक्लेश होता है, उस ऋतु में मुनि वही तपस्या करते हैं॥१२॥

परीसहरिऊदंता, धुयमोहा जिइंदिया।  
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो॥१३॥

अन्वयार्थ-परीसहरिऊदंता=परीषह रूपी शत्रुओं को जीतने वाले, धुयमोहा=मोह-ममता के त्यागी, जिइंदिया=इंद्रियों को जीतने वाले, महेसिणो=महर्षि, सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा=सभी दुःखों का नाश करने के लिए, मोक्ष प्राप्ति के लिए, पक्कमंति=पराक्रम करते हैं-संयम और तप में प्रवृत्त होते हैं॥१३॥

दुक्कराइं करेत्ता णं, दूसहाइं सहेत्तु य।  
केइत्थ देवलोगेसु, केइ सिज्झंति नीरया॥१४॥

अन्वयार्थ-दुक्कराइं=दुष्कर क्रियाओं को, करेत्ता णं=करके, य=और, दूसहाइं=दुःसह कष्टों को, सहेत्तु=सहन करके, केइ=कितने, देवलोगेसु=देवलोकों में उत्पन्न होते हैं और केइत्थ=कई इसी भव में, नीरया=कर्म-रज से रहित होकर, सिज्झंति=सिद्ध हो जाते हैं-मोक्ष चले जाते हैं॥१४॥

खवेत्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य।  
सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिनिव्वुड॥१५॥ त्ति बेमि॥

अन्वयार्थ- सिद्धिमग्गं=मोक्षमार्ग के, अणुप्पत्ता=साधक, ताइणो=छः काय जीवों के रक्षक मुनि, संजमेण=संयम से, य=और, तवेण=तप से, पुव्वकम्माइं=पहले बंधे हुए कर्मों को, खवेत्ता=क्षय करके, परिनिव्वुड=निर्वाण प्राप्त करते हैं॥१५॥ त्ति बेमि=पूर्ववत्।

॥ तीसरा अध्ययन समाप्त॥

## ‘छज्जीवणिया’ नामक चतुर्थ अध्ययन

इस अध्ययन में छः काय जीवों का स्वरूप तथा उनकी रक्षा का उपाय बतलाया गया है। इस अध्ययन के प्रारम्भ में समग्र विश्व के छः प्रकार (निकाय) के जीवों के स्वरूप और प्रकार का वर्णन होने से इसका नाम “छज्जीवणिया” (षट्जीवनिकाय) रखा गया है।

सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं-इह खलु छज्जीवणिया नामऽज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुयक्खाया सुपणत्ता सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती॥१॥

कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामऽज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुयक्खाया सुपणत्ता सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती?॥२॥

अन्वयार्थ- आउसं=हे आयुष्यमन् शिष्य! मे=मैंने, सुयं=सुना है कि, तेणं=उन, भगवया=भगवान ने, एवं=इस प्रकार, अक्खायं=कहा है कि, इह=इस जिनशासन में, खलु=निश्चय से, छज्जीवणिया=षट्जीवनिकाय, नामऽज्झयणं=नामक अध्ययन है, समणेणं= श्रमण-तपस्वी, कासवेणं= काश्यपगोत्रीय, भगवया=भगवान, महावीरेणं=महावीर ने, पवेइया=सम्यक् प्रकार से उसकी प्ररूपणा की है, सुयक्खाया=सम्यक् प्रकार से कथन किया है, सुपणत्ता=भली प्रकार से बतलाया है। शिष्य ने पूछा-भगवन्! क्या, अज्झयणं=उस अध्ययन का, अहिज्जिउं=अध्ययन करना-सीखना, मे=मेरे लिए, सेयं=कल्याणकारी है। गुरु ने कहा-हाँ! धम्मपन्नत्ती=उस अध्ययन को सीखने से धर्म का बोध होता है॥१॥

अन्वयार्थ- कयरा=वह छज्जीवणिया अध्ययन कौन=सा है, जिसका अध्ययन करना मेरे लिए कल्याणकारी है। शेष शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है॥२॥

इमा खलु सा छज्जीवणिया नामऽज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुयक्खाया सुपणत्ता सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती। तं जहा- पुढविकाइया<sup>१</sup> आउकाइया<sup>२</sup> तेउकाइया<sup>३</sup> वाउकाइया<sup>४</sup> वणस्सइकाइया<sup>५</sup> तसकाइया<sup>६</sup>॥३॥

अन्वयार्थ- अब गुरु शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हैं कि इमा=यह छज्जीवणिया अध्ययन इस प्रकार है। शेष शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है॥३॥



अन्वयार्थ- तं जहा=जैसे कि, पुढविकाइया=पृथ्वीकायिक (पृथ्वी ही जिन जीवों का शरीर है), आउकाइया=अप्कायिक (पानी ही जिन जीवों का शरीर है), तेउकाइया=तेउकायिक (अग्नि ही जिन जीवों का शरीर है), वाउकाइया=वायुकायिक (वायु ही जिन जीवों का शरीर है), वणस्सइकाइया= वनस्पतिकायिक (वनस्पति ही जिन जीवों का शरीर है), तसकाइया=त्रसकाय के जीव॥3॥

पुढवि चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढो सत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं॥४॥  
आउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढो सत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं॥५॥  
तेउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढो सत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं॥६॥  
वाउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढो सत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं॥७॥

अन्वयार्थ- सत्थपरिणएणं=शस्त्र-परिणत के, अन्नत्थ=अतिरिक्त, पुढवि=पृथ्वीकाय, आउ=अप्काय, तेउ=अग्निकाय, वाउ=वायुकाय और वणस्सइ=वनस्पतिकाय, चित्तमंतमक्खाया=सचित्त कही गई है, अणेगजीवा=यह अनेक जीवों वाली है, पुढो सत्ता=उसमें अनेक जीव पृथक-पृथक रहे हुए हैं॥4-7॥

भावार्थ- पाँचों स्थावरकाय सचित्त हैं। वे अनेक जीव रूप हैं। उन जीवों का अस्तित्व पृथक-पृथक है। इन कार्यों के जो-जो शस्त्र हैं, उनसे जब तक परिणत न हो जाए अर्थात् दूसरा शस्त्र न लग जाए, तब तक ये सचित्त रहते हैं। शस्त्र-परिणत होने पर अचित्त हो जाते हैं। आगे वनस्पतिकाय का विशेष वर्णन करते हैं-

वणस्सइ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढो सत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं, तं जहा-अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया, बीयरुहा, सम्मुच्छिमा, तणलया, वणस्सइकाइया, सबीया, चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढो सत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं॥८॥

अन्वयार्थ- तं जहा=वह इस प्रकार है, अग्गबीया=ऐसी वनस्पति जिसका बीज अग्रभाग पर होता है, जैसे-कोरंट का वृक्ष, मूलबीया=जिसका बीज मूल भाग में होता है, जैसे-कंद आदि, पोरबीया=जिसका बीज (पर्व गाँठ) में होता है, जैसे-गन्ना आदि, खंधबीया=जिसका बीज स्कन्ध में होता है, जैसे-बड, पीपल आदि, बीयरुहा=बीज से उगने वाली वनस्पति, जैसे-गेहूँ, जौ, चावल आदि चौबीस प्रकार के धान्य, सम्मुच्छिमा=बिना बीज के अपने आप उत्पन्न होने वाली वनस्पति, जैसे-घास, दूब, अंकुर आदि,

तणलया=तृण, लता आदि ये सब, वणस्सइकाइया=वनस्पतिकायिक हैं, अणेगजीवा=उसमें अनेक जीव हैं, पुढोसत्ता=वे भिन्न-भिन्न सत्ता वाले हैं, सत्थपरिणएणं=शस्त्र परिणत के, अन्नत्थ=अतिरिक्त, सबीया=बीज सहित वनस्पति, चित्तमंतमक्खाया =सचित्त कही गई हैं॥१८॥ अब त्रसकाय का वर्णन किया जाता है-

से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा तं जहा- अंडया, पोयया जराउया, रसया, संसेइमा, सम्मुच्छिमा, उब्भिया, उववाइया, जेसिं केसिंचि पाणाणं, अभिक्कंतं, पडिक्कंतं, संकुचियं, पसारियं, रुयं, भंतं, तसियं, पलाइयं, आगइ-गइविन्नाया, जे य कीड-पयंगा, जा य कुंथु-पिवीलिया, सव्वे बेइंदिया, सव्वे तेइंदिया, सव्वे चउरिंदिया, सव्वे पंचिंदिया, सव्वे तिरिक्खजोणिया, सव्वे नेरइया, सव्वे मणुया, सव्वे देवा, सव्वे पाणा, परमाहम्मिया, एसो खलु छट्ठो जीवनिक्काओ तसक्काओ त्ति पवुच्चइ॥१९॥

अन्वयार्थ- से=अब, जे=जो, इमे=ये आगे कहे जाने वाले, तसा पाणा=त्रस प्राणी हैं, पुण=फिर, अणेगे=अनेक तथा, बहवे=बहुत प्रकार के हैं। तं जहा=जैसे कि, अंडया=अंडे से उत्पन्न होने वाले, पोयया=पोतज (जन्म के समय चर्म से आवृत्त होकर कोथली (थैली) सहित उत्पन्न होने वाले) जराउया=जरायु सहित पैदा होने वाले, रसया=रस में उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रियादि, संसेइमा=पसीने से उत्पन्न होने वाले, सम्मुच्छिमा=सम्मूर्च्छिम (देव, नैरयिक के अतिरिक्त बिना माता-पिता के संयोग से होने वाली जीवों की उत्पत्ति) उब्भिया=जमीन फोड़कर उत्पन्न होने वाले, उववाइया=उपपात जन्म वाले देव, नैरयिक, जेसिं केसिंचि=इनमें से कोई-कोई, पाणाणं=प्राणी अभिक्कंतं=सामने आना, पडिक्कंतं=पीछे सरकना, संकुचियं=शरीर को संकुचित कर लेना, पसारियं=शरीर को फैलाना, रुयं=शब्द का उच्चारण करना, भंतं=इधर-उधर भ्रमण करना, तसियं=भयभीत होना, पलाइयं=डर से भागना, आगइगइ=आगति और गति, विन्नाया=आदि क्रियाओं को जानने वाले हैं, य=और जे=जो, कीडपयंगा=कीड़े और पतंगे हैं, य=और जा=जो, कुंथुपिवीलिया=कुंथुवा और चीटियाँ हैं, सव्वे=सभी बेइंदिया=बेइन्द्रिय, सव्वे=सभी, तेइंदिया=तेइन्द्रिय, चउरिंदिया=चौरिन्द्रिय, पंचिंदिया=पंचेन्द्रिय, तिरिक्खजोणिया=तिर्यञ्च, नेरइया=नैरयिक, मणुया=मनुष्य, देवा=देव, पाणा=प्राणी, परमाहम्मिया=परम सुख के अभिलाषी हैं। एसो=यह, खलु=निश्चय

करके छट्ठो=छठा, जीवनिकाओ=जीवनिकाय, तसकाओ त्ति=त्रसकाय,  
पवुच्चइ=कहा जाता है।।9।।

भावार्थ-सभी प्राणी सुख को चाहते हैं। अतः किसी की हिंसा नहीं  
करनी चाहिए।

इच्चेएहिं छहिं जीवनिकाएहिं नेव सयं दंडं समारंभेज्जा, नेवऽन्नेहिं  
दंडं समारंभावेज्जा, दंडं समारंभते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए  
तिविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि करेतं  
पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरहामि  
अप्पाणं वोसिरामि।।१०।।

अन्वयार्थ- इच्चेएहिं=इन, छहिं=छः, जीवनिकाएहिं=जीवनिकायों के,  
दंडं=हिंसा रूप दंड का, सयं=स्वयं, नेव समारंभेज्जा=आरम्भ न करे,  
अन्नेहिं=दूसरों से, दंडं=हिंसा रूप दंड का, नेव समारंभावेज्जा=आरम्भ न  
करावें और, दंडं=हिंसा रूप दण्ड का, समारंभते=आरम्भ करते हुए, अन्ने  
वि=अन्य जीवों को, न समणुजाणेज्जा=भला भी न समझें। अब शिष्य  
प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन्! मैं, जावज्जीवाए=जीवन पर्यंत, तिविहं=तीन  
करण से-करना, कराना और अनुमोदना से और तिविहेणं=तीन योग अर्थात्,  
मणेणं=मन से, वायाए=वचन से, और काएणं=काया से, न करेमि=न  
करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा और करेतं पि=करते हुए, अन्नं=दूसरे को,  
न समणुजाणामि=भला भी नहीं समझूँगा। भंते=हे भगवन्! तस्स=उस दण्ड  
का, पडिक्कमामि=प्रतिक्रमण करता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षी से निंदा करता  
हूँ, गरहामि=गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ। अप्पाणं=हिंसा-दण्ड सेवन करने  
वाली पापात्मा को, वोसिरामि=त्यागता हूँ।।10।।

[ पुढविक्कातिए जीवे ण सद्दहति जो जिणेहि पण्णत्ते।

अणभिगतपुण्ण-पावो ण सो उवट्ठावणाजोग्गो।।१।।

आउक्कातिए जीवे ण सद्दहति जो जिणेहि पण्णत्ते।

अणभिगतपुण्ण-पावो ण सो उवट्ठावणाजोग्गो।।२।।

तेउक्कातिए जीवे ण सद्दहति जो जिणेहि पण्णत्ते।

अणभिगतपुण्ण-पावो ण सो उवट्ठावणाजोग्गो।।३।।

वाउक्कातिए जीवे ण सद्दहति जो जिणेहि पण्णत्ते।

अणभिगतपुण्ण-पावो ण सो उवट्ठावणाजोग्गो॥४॥  
वणस्सत्तिकातिए जीवे ण सद्दहति जो जिणेहि पण्णत्ते।  
अणभिगतपुण्ण-पावो ण सो उवट्ठावणाजोग्गो॥५॥  
तसकातिए जीवे ण सद्दहति जो जिणेहि पण्णत्ते।  
अणभिगतपुण्ण-पावो ण सो उवट्ठावणाजोग्गो॥६॥

[अन्वयार्थ- जो जिणेहि पण्णत्ते=जो जिनेश्वर भगवन्तो द्वारा प्ररूपित,  
पुढविक्कातिए=पृथ्वीकायिक, जीवे=जीवों, ण सद्दहति=पर श्रद्धा नहीं करता  
और अणभिगतपुण्ण-पावो=पुण्य-पाप को नहीं जानता, ण सो  
उवट्ठावणाजोग्गो=वह उपस्थापना (बड़ी दीक्षा) के योग्य नहीं होता॥१॥

इसी प्रकार गाथा 2 से 6 में क्रमशः आउक्कातिए=अप्कायिक,  
तेउक्कातिए=तेउकायिक, वाउक्कातिए=वायुकायिक, वणस्सत्तिकातिए=  
वनस्पतिकायिक, तसकातिए=त्रसकायिक जीवों के लिए समझना॥२-६॥

पुढविक्कातिए जीवे सद्दहति जो जिणेहि पण्णत्ते।  
अभिगतपुण्ण-पावो सो हु उवट्ठावणे जोग्गो॥७॥  
आउक्कातिए जीवे सद्दहति जो जिणेहि पण्णत्ते।  
अभिगतपुण्ण-पावो सो हु उवट्ठावणे जोग्गो॥८॥  
तेउक्कातिए जीवे सद्दहति जो जिणेहि पण्णत्ते।  
अभिगतपुण्ण-पावो सो हु उवट्ठावणे जोग्गो॥९॥  
वाउक्कातिए जीवे सद्दहति जो जिणेहि पण्णत्ते।  
अभिगतपुण्ण-पावो सो हु उवट्ठावणे जोग्गो॥१०॥  
वणस्सत्तिकातिए जीवे सद्दहति जो जिणेहि पण्णत्ते।  
अभिगतपुण्ण-पावो सो हु उवट्ठावणे जोग्गो॥११॥  
तसकातिए जीवे सद्दहति जो जिणेहि पण्णत्ते।  
अभिगतपुण्ण-पावो सो हु उवट्ठावणे जोग्गो॥१२॥ ]

अन्वयार्थ- जो जिणेहि पण्णत्ते=जो जिनेश्वर भगवन्तो द्वारा प्ररूपित,  
पुढविक्कातिए=पृथ्वीकायिक, जीवे=जीवों, सद्दहति=पर श्रद्धा करता है और  
अभिगतपुण्ण-पावो=पुण्य-पाप को जानता, सो हु उवट्ठावणे जोग्गो=वह  
उपस्थापना (बड़ी दीक्षा) के योग्य होता है॥७॥

इसी प्रकार गाथा 8 से 12 में क्रमशः आउक्कातिए=अप्कायिक,

तेउक्कातिए=तेउकायिक, वाउक्कातिए=वायुकायिक, वणस्सत्तिकतिए=वनस्पतिकायिक, तसक्कातिए=त्रसकायिक जीवों के लिए समझना॥८-१२॥]

पढमे भंते! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं। सव्वं भंते! पाणाइवायं पच्चक्खामि, से सुहुमं वा, बायरं वा, तसं वा, थावरं वा, नेव सयं पाणे अइवाएज्जा, नेवऽन्नेहिं पाणे अइवायावेज्जा, पाणे अइवायंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि करेत्तं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि। पढमे भंते! महव्वए उवट्ठओ मि सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं॥११॥

अन्वयार्थ- भंते=हे भगवन्! पढमे= प्रथम, महव्वए=महाव्रत में, पाणाइवायाओ=प्राणातिपात से, वेरमणं=निवर्तन होता है, अतः भंते=हे भगवन्! मैं, सव्वं=सभी प्रकार की, पाणाइवायं=प्राणातिपात रूप हिंसा का, पच्चक्खामि =त्याग करता हूँ, से=वह इस प्रकार है, सुहुमं=सूक्ष्म, वा=अथवा, बायरं=बादर, तसं=त्रस, वा=अथवा, थावरं=स्थावर प्राणियों के, पाणे=प्राणों को, सयं=स्वयं, नेव अइवाएज्जा=हनन नहीं करूँगा और, नेवऽन्नेहिं=न दूसरों से, पाणे=प्राणियों के प्राणों का, अइवायावेज्जा=हनन कराऊँगा। पाणे=प्राणियों के प्राणों का, अइवायंते=हनन करने वाले, अन्ने वि=दूसरों को, न समणुजाणेज्जा=भला भी नहीं जानूँगा, जावज्जीवाए=जीवन पर्यन्त, तिविहं=तीन करण (करना, कराना, अनुमोदना) से, तिविहेणं=तीन योग अर्थात् मणेणं=मन से, वायाए=वचन से, काएणं=काया से, न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करेत्तं पि=करते हुए, अन्नं=दूसरों को, न समणुजाणामि=भला भी नहीं समझूँगा, भंते=हे भगवन्! मैं तस्स=उस हिंसा रूपी पाप से, पडिक्कमामि=निवृत्त होता हूँ, निंदामि=उस पाप की निंदा करता हूँ, गरहामि=गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=हिंसा रूप दंड सेवन करने वाली आत्मा को, वोसिरामि=त्यागता हूँ, भंते=हे भगवन्! मैं सव्वाओ=सभी, पाणाइवायाओ=प्राणातिपात से, वेरमणं=निवृत्ति रूप, पढमे=प्रथम, महव्वए=महाव्रत में, उवट्ठओ मि=उपस्थित होता हूँ॥११॥

भावार्थ- शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन्! मैं प्रथम महाव्रत के पालन में उपस्थित (उद्धत) होता हूँ और पूर्वकाल में किए हुए हिंसा संबंधी पाप से निवृत्त होता हूँ।

अहावरे दोच्चे भंते! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं। सव्वं भंते! मुसावायं पच्चक्खामि, से कोहा वा, लोहा वा, भया वा, हासा वा। नेव सयं मुसं वएज्जा, नेवऽन्नेहिं मुसं वायावेज्जा, मुसं वयंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि करेतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि। दोच्चे भंते! महव्वए उवट्ठिओ मि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं॥१२॥

अन्वयार्थ- भंते=हे भगवन्! अहावरे=इसके बाद, दोच्चे=दूसरे, महव्वए=महाव्रत में, मुसावायाओ=मृषावाद से, वेरमणं=निवर्तन होता है। भंते=हे भगवन्! मैं, सव्वं=सभी प्रकार के, मुसावायं=मृषावाद का, पच्चक्खामि=त्याग करता हूँ। से=वह इस प्रकार है, कोहा=क्रोध से, वा=अथवा, लोहा वा=लोभ से, भया वा=भय से, अथवा, हासा वा=हँसी से, सयं=मैं स्वयं, मुसं=असत्य, नेव वएज्जा=नहीं बोलूँगा, नेवऽन्नेहिं=न दूसरों से, मुसं=असत्य, वायावेज्जा=बुलवाऊँगा, मुसं=असत्य, वयंते वि=बोलते हुए, अन्ने=दूसरों को, न समणुजाणेज्जा=भला भी नहीं समझूँगा। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। भंते=हे भगवन्! मैं, सव्वाओ=सभी, मुसावायाओ=मृषावाद से, वेरमणं=त्याग रूप, दोच्चे=दूसरे, महव्वए=महाव्रत में, उवट्ठिओ मि=उपस्थित होता हूँ॥१२॥

अहावरे तच्चे भंते! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं। सव्वं भंते! अदिन्नादाणं पच्चक्खामि। से गामे वा, नगरे वा, रन्ने वा, अप्पं वा, बहूं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा। नेव सयं अदिन्नं गेणहेज्जा, नेवऽन्नेहिं अदिन्नं गेणहावेज्जा, अदिन्नं गेणहंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि करेतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि। तच्चे भंते! महव्वए उवट्ठिओ मि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं॥१३॥

अन्वयार्थ- भंते=हे भगवन्! अहावरे=इसके बाद, तच्चे=तीसरे, महव्वए=महाव्रत में, अदिन्नादाणाओ=अदत्तादान से, वेरमणं=निवर्तन होता है, भंते=हे भगवन्! मैं, सव्वं=सभी प्रकार के, अदिन्नादाणं=अदत्तादान का, पच्चक्खामि=प्रत्याख्यान करता हूँ, से=वह इस प्रकार कि, गामे=ग्राम में, वा=अथवा नगरे

वा=नगर में अथवा, रन्ने वा=वन में, अप्यं वा=अल्प अथवा, बहुं वा=बहुत, अणुं=सूक्ष्म, वा=अथवा, थूलं वा=स्थूल अथवा, चित्तमंतं वा=सचेतन अथवा, अचित्तमंतं वा=अचेतन आदि किसी भी, अदिन्नं=बिना दिए हुए पदार्थ को, सयं=मैं स्वयं, नेव गेणहेज्जा=ग्रहण नहीं करूँगा, नेवऽन्नेहिं=न दूसरों से, अदिन्नं=बिना दिए हुए पदार्थ को, गेणहावेज्जा=ग्रहण कराऊँगा और अदिन्नं=बिना दिए हुए पदार्थ को, गेणहंते वि=ग्रहण करते हुए, अन्ने=दूसरों को, न समणुजाणेज्जा=भला भी नहीं समझूँगा। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। भंते=हे भगवन्! मैं, अदिन्नादाणाओ=अदत्तादान से, वेरमणं=निवृत्ति रूप, तच्चे=तीसरे, महव्वए=महाव्रत में, उवट्ठओ मि=उपस्थित होता हूँ॥13॥

अहावरे चउत्थे भंते! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं। सव्वं भंते! मेहुणं पच्चक्खामि, से दिव्वं वा, माणुस्सं वा, तिरिक्खजोणियं वा। नेव सयं मेहुणं सेवेज्जा, नेवऽन्नेहिं मेहुणं सेवावेज्जा, मेहुणं सेवते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि। चउत्थे भंते! महव्वए उवट्ठओ मि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं॥१४॥

अन्वयार्थ- भंते=हे भगवन्! अहावरे=इसके बाद, चउत्थे=चौथे, महव्वए=महाव्रत में, मेहुणाओ=मैथुन से, वेरमणं=निवर्तन होता है। भंते=हे भगवन्! मैं, सव्वं=सभी प्रकार के, मेहुणं=मैथुन का, पच्चक्खामि=प्रत्याख्यान करता हूँ, से=वह इस प्रकार की, दिव्वं=देव संबंधी, वा=अथवा, माणुस्सं=मनुष्य संबंधी वा=अथवा तिरिक्खजोणियं=तिर्यञ्च संबंधी, इन तीनों जातियों में किसी के भी साथ, मेहुणं=मैथुन, सयं=मैं स्वयं, नेव सेवेज्जा=सेवन नहीं करूँगा, नेवऽन्नेहिं=न दूसरों से, मेहुणं=मैथुन, सेवावेज्जा=सेवन कराऊँगा और मेहुणं=मैथुन, सेवते वि=सेवन करने वाले, अन्ने=दूसरों को, न समणुजाणेज्जा=भला भी नहीं समझूँगा। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। भंते=हे भगवन्! मैं, सव्वाओ=सभी प्रकार के, मेहुणाओ=मैथुन से, वेरमणं=निवृत्ति रूप, चउत्थे=चौथे, महव्वए=महाव्रत में, उवट्ठओ मि=उपस्थित होता हूँ॥14॥

अहावरे पंचमे भंते! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं। सव्वं भंते!

परिग्रहं पच्यक्खामि, से अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा। नेव सयं परिग्रहं परिगेणहेज्जा, नेवऽन्नेहिं परिग्रहं परिगेणहावेज्जा, परिग्रहं परिगेणहंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि। पंचमे भंते! महव्वए उवट्ठओ मि सव्वाओ परिग्रहाओ वेरमणं॥१५॥

अन्वयार्थ- भंते=हे भगवन्! अहावरे=इसके बाद, पंचमे=पाँचवें, महव्वए=महाव्रत में, परिग्रहाओ=परिग्रह से, वेरमणं=निवर्तन होता है। भंते=हे भगवन्! मैं, सव्वं=सभी प्रकार के, परिग्रहं=परिग्रह को, पच्यक्खामि=त्यागता हूँ, से=वह इस प्रकार है, अप्पं वा=अल्प अथवा बहुं वा=बहुत, अणुं वा=सूक्ष्म अथवा, थूलं वा=स्थूल अथवा, चित्तमंतं वा=सचेतन, अचित्तमंतं वा=अथवा अचेतन, परिग्रहं=परिग्रह, सयं=मैं स्वयं, नेव परिगेणहेज्जा=ग्रहण नहीं करूँगा, नेवऽन्नेहिं=न दूसरों से, परिग्रहं=परिग्रह को, परिगेणहावेज्जा=ग्रहण कराऊँगा, परिग्रहं=परिग्रह को, परिगेणहंते वि=ग्रहण करने वाले, अन्ने=दूसरों को, न समणुजाणेज्जा=भला भी न समझूँगा। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। भंते=हे भगवन्! मैं सव्वाओ=सभी प्रकार के, परिग्रहाओ=परिग्रह से, वेरमणं=निवर्तन रूप, पंचमे=पाँचवें, महव्वए=महाव्रत में, उवट्ठओ मि=उपस्थित होता हूँ॥१५॥

भावार्थ- शिष्य सभी प्रकार के परिग्रह से विरमण रूप पाँचवें महाव्रत को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता है।

अहावरे छट्ठे भंते! वए राईभोयणाओ वेरमणं। सव्वं भंते! राईभोयणं पच्यक्खामि, से असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा। नेव सयं राइं भुंजेज्जा, नेवऽन्नेहिं राइं भुंजावेज्जा, राइं भुंजंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते। पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि। छट्ठे भंते! वए उवट्ठओ मि सव्वाओ राईभोयणाओ वेरमणं॥१६॥

अन्वयार्थ- भंते=हे भगवन्! अहावरे=इसके बाद, छट्ठे=छठे, वए=व्रत में, राईभोयणाओ=रात्रि-भोजन का, वेरमणं=त्याग होता है, भंते=हे भगवन्!



मैं, सव्वं=सभी प्रकार के, राईभोयणं=रात्रि-भोजन का, पच्चक्खामि= त्याग करता हूँ। से=वह इस प्रकार है कि, असणं वा=अन्नादि अथवा, पाणं वा=पानी आदि अथवा, खाइमं वा=खाद्य, मेवा आदि अथवा, साइमं वा=स्वाद-लोग, इलायची आदि, सयं=मैं स्वयं, राइं=रात्रि में, नेव=नहीं, भुंजेज्जा=खाऊँगा, नेवऽनेहिं=न दूसरों को, राइं=रात्रि में, भुंजावेज्जा= खिलाऊँगा और राइं=रात्रि में, भुंजंते वि=भोजन करने वाले, अन्ने=दूसरों को, न समणुजाणेज्जा=भला भी न समझूँगा। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। भंते=हे भगवन्! मैं, सव्वाओ=सभी प्रकार के, राईभोयणाओ=रात्रि भोजन से, वेरमणं=निवृत्ति रूप, छट्ठे=छठे, वए=व्रत में, उवट्ठिओ मि=उपस्थित होता हूँ॥16॥

इच्चेयाइं पंच महव्वयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं अत्तहियट्ठयाए उवसंपज्जित्ता णं विहरामि॥१७॥

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे, दिया वा, राओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, एगओ वा, परिसागओ वा, से पुढविं वा, भित्तिं वा, सिलं वा, लेलुं वा, ससरक्खं वा कायं, ससरक्खं वा वत्थं, हत्थेण वा, पाएण वा, अंगुलियाए वा, कट्ठेण वा, कलिंचेण वा, सलागाए वा, नाऽऽलिहेज्जा, न विलिहेज्जा, न घट्टेज्जा, न भिंदेज्जा, अन्नं नाऽऽलिहावेज्जा, न विलिहावेज्जा, न घट्टावेज्जा, न भिंदावेज्जा, अन्नं पि आलिहंतं वा, विलिहंतं वा, घट्टंतं वा, भिंदंतं वा, न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि॥१८॥

इच्चेयाइं=ये पहले कहे हुए, पंच महव्वयाइं=पाँच महाव्रतों को और राईभोयणवेरमण-छट्ठाइं=रात्रि भोजन विरमण रूप छठे व्रत को, अत्तहियट्ठयाए=आत्म-कल्याण के लिए, उवसंपज्जित्ता णं=स्वीकार करके मैं, विहरामि=संयम में विचरता हूँ॥17॥

अन्वयार्थ- संजय=संयमी, विरय=पाप से विरक्त, पडिहय=कर्मों की स्थिति को प्रतिहत करने वाला, पच्चक्खाय-पावकम्मे=पाप-कर्मों के बंध का प्रत्याख्यान करने वाला, से=वह पूर्वोक्त महाव्रतों को धारण करने वाला,

भिक्खू=साधु, वा=अथवा भिक्खुणी वा=साध्वी, दिया वा=दिन में अथवा, राओ वा=रात्रि में, सुत्ते वा=सोते हुए, जागरमाणे वा=जागते हुए, एगओ वा=अकेला अथवा, परिसागओ वा=साधु-समूह में, से=इस प्रकार, पुढविं वा=पृथ्वी को अथवा, भित्तिं वा=दीवार को, सिलं वा=शिला को अथवा, लेलुं वा=ठेले को, ससरक्खं वा कायं=सचित्त रज सहित शरीर को, ससरक्खं वा वत्थं=सचित्त रज सहित वस्त्रों को, हत्थेण वा=हाथ से अथवा, पाएण वा=पैर से अथवा, अंगुलियाए वा=अंगुलि से अथवा, कट्ठेण वा=लकड़ी से अथवा, कलिंचेण वा=डंडे से अथवा, सलागाए वा=लोहे की छड़ से अथवा, नाऽऽलिहेज्जा=सचित्त पृथ्वी पर लिखे नहीं, न विलिहेज्जा=विशेष लिखे नहीं, न घट्टेज्जा=एक स्थान से दूसरे स्थान पर डाले नहीं, न भिदेज्जा=भेदन न करें, अन्नं=दूसरे से, नाऽऽलिहावेज्जा=लिखावे नहीं, न विलिहावेज्जा=औरों से विशेष लिखावे नहीं, न घट्टावेज्जा=एक स्थान से दूसरे स्थान पर गिरावे नहीं, न भिंदावेज्जा=भेदन न करावे, आलिहंतं वा=लिखने वाले, विलिहंतं वा=विशेष लिखने वाले, घट्टंतं वा=एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले, भिंदंतं वा=भेदन करने वाले, अन्नं पि=दूसरों को भी, न समणुजाणेज्जा=भला भी नहीं समझे। शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन्! मैं, जावज्जीवाए=जीवन पर्यन्त, तिविहं=तीन करण और, तिविहेणं=तीन योग से अर्थात्, मणेणं=मन से, वायाए=वचन से, काएणं=काया से, न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करेतं पि=करते हुए, अन्नं=दूसरों को, न समणुजाणामि=भला भी नहीं समझूँगा। भंते=हे भगवन्! मैं, तस्स=उस पाप से अर्थात् सचित्त पृथ्वी जन्य पाप से, पडिक्कमामि=पृथक होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षी से निंदा करता हूँ, गरहामि=गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=ऐसे पापकारी कर्म से अपनी आत्मा को, वोसिरामि=हटाता हूँ॥१८॥

**भावार्थ-** अपनी आत्मा के कल्याण के लिए शिष्य अहिंसा आदि पाँच महाव्रतों और छोटे रात्रि भोजन त्याग रूप व्रत का पालन करने की प्रतिज्ञा करता है।

छः काय के जीवों की रक्षा के बिना चारित्र-धर्म का पालन नहीं हो सकता है। अतः छः काय के जीवों की रक्षा के विषय में सूत्रकार कहते हैं-

**भावार्थ-** इस सूत्र में पृथ्वीकाय की यतना का वर्णन किया गया है।

अब आगे के सूत्र में अप्काय की यतना का वर्णन किया जाएगा-

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे, दिया वा, राओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, एगओ वा, परिसागओ वा, से उदगं वा, ओसं वा, हिमं वा, महियं वा, करगं वा, हरतणुगं वा, सुद्धोदगं वा, उदओल्लं वा कायं, उदओल्लं वा वत्थं, ससणिद्धं वा कायं, ससणिद्धं वा वत्थं, नाऽऽमुसेज्जा, न संफुसेज्जा, न आवीलेज्जा, न पवीलेज्जा, न अक्खोडेज्जा, न पक्खोडेज्जा, न आयावेज्जा, न पयावेज्जा, अन्नं नाऽऽमुसावेज्जा, न संफुसावेज्जा, न आवीलावेज्जा, न पवीलावेज्जा, न अक्खोडावेज्जा, न पक्खोडावेज्जा, न आयावेज्जा, न पयावेज्जा, अन्नं पि आमसंतं वा, संफुसंतं वा, आवीलंतं वा, पवीलंतं वा, अक्खोडेंटं वा, पक्खोडेंटं वा, आयावेंतं वा, पयावेंतं वा, न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि करेंटं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि॥१९॥

अन्वथार्थ- 'से भिक्खू वा से परिसागओ' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है, साधु अथवा साध्वी, उदगं वा=जल को, ओसं वा=ओस को, हिमं वा=बर्फ को, महियं वा=धूंअर के पानी को, करगं वा=ओले के पानी को, हरतणुगं वा=हरियाली पर पड़े हुए जल बिंदुओं को, सुद्धोदगं वा=आकाश से गिरे हुए जल को, उदओल्लं वा कायं=जल से भीगे हुए शरीर को, उदओल्लं वा वत्थं=जल से भीगे हुए वस्त्र को, ससणिद्धं वा कायं=कुछ-कुछ भीगे हुए शरीर को, ससणिद्धं वा वत्थं=कुछ-कुछ भीगे हुए वस्त्र को, नाऽऽमुसेज्जा=जरा भी स्पर्श न करें, न संफुसेज्जा=अधिक स्पर्श न करें, न आवीलेज्जा=एक बार न निचोड़े, न पवीलेज्जा=बार-बार न निचोड़ें, न अक्खोडेज्जा=न झटके, न पक्खोडेज्जा=बार-बार न झटके, न आयावेज्जा=न सुखावे, न पयावेज्जा=बार-बार न सुखावे, अन्नं=दूसरे से, नाऽऽमुसावेज्जा=जरा भी स्पर्श न करावे, न संफुसावेज्जा=बार-बार स्पर्श न करावे, न आवीलावेज्जा= न निचोड़वावे, न पवीलावेज्जा=बार-बार न निचोड़वावे, न अक्खोडावेज्जा=झटकावे नहीं, न पक्खोडावेज्जा=बार-बार झटकावे नहीं, न आयावेज्जा=न सुखवावे, न पयावेज्जा=बार-बार न सुखवावे तथा, आमसंतं वा=जरा भी स्पर्श करने वाले, संफुसंतं वा=बार-बार स्पर्श करने

वाले, आवीलंतं वा=निचोड़ने वाले, पवीलंतं वा=बार-बार निचोड़ने वाले, अक्खोडेंतं वा=झटकाने वाले, पक्खोडेंतं वा=बार-बार झटकाने वाले, आयावेतं वा=सुखाने वाले, पयावेतं वा=बार-बार सुखाने वाले, अन्नं पि=दूसरे को, न समणुजाणेज्जा=भला नहीं समझे 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक का अर्थ पूर्ववत् है॥19॥ अब तेउ (अग्नि) काय की यतना के विषय में वर्णन किया गया है-

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावक्कमे, दिया वा, राओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, एगओ वा, परिसागओ वा, से अगणिं वा, इंगालं वा, मुम्मुरं वा, अच्चिं वा, जालं वा, अलायं वा, सुद्धागणिं वा, उक्कं वा, न उंजेज्जा, न घट्टेज्जा, न उज्जालेज्जा, न निव्वावेज्जा, अन्नं न उंजावेज्जा, न घट्टावेज्जा, न उज्जालावेज्जा, न निव्वावेज्जा, अन्नं पि उंजंतं वा, घट्टंतं वा, उज्जालंतं वा, निव्वावंतं वा, न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि॥२०॥

अन्वथार्थ- 'से भिक्खू वा से परिसागओ' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है, साधु अथवा साध्वी, अगणिं वा=अग्नि को, इंगालं वा=अंगारे को, मुम्मुरं वा=चिनगारी, बकरी आदि के मींगणों की अग्नि को, अच्चिं वा=दीपक की शिखा की अग्नि को, जालं वा=अग्नि के साथ मिली हुई ज्वाला को, अलायं वा=जलता हुआ कंडा या काष्ठ की अग्नि को, सुद्धागणिं वा=काष्ठादि रहित शुद्ध अग्नि को, उक्कं वा=उल्कापात रूप अग्नि को, न उंजेज्जा=ईंधन डालकर न बढ़ावें, न घट्टेज्जा=संघट्टा न करें, न उज्जालेज्जा=जरा भी न जलावे, न निव्वावेज्जा=न बुझावे, अन्नं=दूसरे से, न उंजावेज्जा=ईंधन डालकर न बढ़ावे, न घट्टावेज्जा=संघट्टा न करवावे, न उज्जालावेज्जा=न जलवावे, न निव्वावेज्जा=न बुझावावे तथा, उंजंतं वा=ईंधन डालकर बढ़ाने वाले, घट्टंतं वा=संघट्टा करने वाले, उज्जालंतं वा=जलाने वाले, निव्वावंतं वा=बुझाने वाले, अन्नं पि=दूसरे को, न समणुजाणेज्जा=भला भी न समझे। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है॥20॥ अब वायुकाय की यतना के विषय में वर्णन किया गया है-

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे, दिया वा, राओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, एगओ वा, परिसागओ वा, से सिएण वा, विहुवणेण वा, तालियंटेण वा, पत्तेण वा, साहाए वा, साहाभंगेण वा, पेहुणेण वा, पेहुणहत्थेण वा, चेलेण वा, चेलकण्णेण वा, हत्थेण वा, मुहेण वा, अप्पणो वा कायं, बाहिरं वा वि पोग्गलं न फुमेज्जा, न वीएज्जा, अन्नं न फुमावेज्जा, न वीयावेज्जा, अन्नं पि फुमंतं वा, वीयंतं वा, न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि॥२१॥

अन्वयार्थ- 'से भिक्खू वा से परिसागओ' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। साधु अथवा साध्वी, सिएण वा=चामर से, विहुवणेण वा=पंखे से, तालियंटेण वा=ताड़ वृक्ष के पंखे से, पत्तेण वा=पत्तों से, साहाए वा=शाखा से, साहाभंगेण वा=शाखा के टुकड़ों से, पेहुणेण वा=मोर के पंखों से, पेहुणहत्थेण वा=मोरपिच्छी से, चेलेण वा=वस्त्र से, चेलकण्णेण वा=कपड़े के पल्ले से, हत्थेण वा=हाथ से, मुहेण वा=मुख से, अप्पणो=अपने, कायं=शरीर को, वा=अथवा, बाहिरं वा वि पोग्गलं=बाहरी पुद्गलों को, न फुमेज्जा=फूँक न मारे, न वीएज्जा=पंखे आदि से हवा न करे, अन्नं=दूसरे से, न फुमावेज्जा=फूँक न लगवावे, न वीयावेज्जा=पंखे आदि से हवा न करवावे, फुमंतं वा=फूँक देने वाले, वीयंतं वा=हवा करने वाले, अन्नं पि=दूसरे को, न समणुजाणेज्जा=भला भी न समझे। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है॥२१॥ अब वनस्पतिकाय की यतना का वर्णन किया जाता है-

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे, दिया वा, राओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, एगओ वा, परिसागओ वा, से बीएसु वा, बीयपइट्ठएसु वा, रूढेसु वा, रूढपइट्ठएसु वा, जाएसु वा, जायपइट्ठएसु वा, हरिएसु वा, हरियपइट्ठएसु वा, छिन्नेसु वा, छिन्नपइट्ठएसु वा, सच्चित्तकोल-पुडिनिस्सिएसु वा, न गच्छेज्जा, न चिट्ठेज्जा, न निसीएज्जा, न तुयट्ठेज्जा, अन्नं न गच्छावेज्जा, न चिट्ठावेज्जा, न निसीयावेज्जा, न

तुयट्टावेज्जा, अन्नं पि गच्छंतं वा, चिट्ठंतं वा, निसीयंतं वा, तुयट्टंतं वा, न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंतं! पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि॥२२॥

अन्वयार्थ- 'से भिक्खू वा से परिसागओ' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है, साधु अथवा साध्वी, बीएसु वा=बीजों पर, बीयपइट्ठिएसु वा=बीजों पर रखे हुए शयन आसनादि पर, रूढेसु वा=बीज उग कर जो अंकुरित हुए हों, उन पर, रूढपइट्ठिएसु वा=अंकुरित वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर, जाएसु वा=पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर, जायपइट्ठिएसु वा=पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर, हरिएसु वा= हरी दूब आदि पर, हरियपइट्ठिएसु वा=हरी दूब आदि पर रखे हुए आसनादि पर, छिन्नेसु वा=वृक्ष की कटी हुई हरी शाखाओं पर, छिन्नपइट्ठिएसु वा= वृक्ष की कटी हुई हरी शाखाओं पर रखे हुए आसनादि पर, सच्चित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा= घुन लगे हुए काठ पर, न गच्छेज्जा=न चले, न चिट्ठेज्जा=खड़ा न होवे, न निसीएज्जा=न बैठे, न तुयट्टेज्जा=न सोवे, अन्नं=दूसरे को, न गच्छावेज्जा=न चलावे, न चिट्ठावेज्जा=न खड़ा करे, न निसीयावेज्जा=न बैठावे, न तुयट्टावेज्जा= न सुलावे, गच्छंतं वा=चलते हुए, चिट्ठंतं वा=खड़े हुए, निसीयंतं वा=बैठते हुए, तुयट्टंतं वा=सोते हुए, अन्नं पि=दूसरे को, न समणुजाणेज्जा=भला भी न जाने॥२२॥ 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत्। आगे त्रसकाय की यतना का वर्णन किया जाता है-

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे, दिया वा, राओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, एगओ वा, परिसागओ वा, से कीडं वा, पयंगं वा, कुंथुं वा, पिवीलियं वा, हत्थंसि वा, पायंसि वा, बाहुंसि वा, ऊरुंसि वा, उदरंसि वा, सीसंसि वा, वत्थंसि वा, पडिग्गहंसि वा, कंबलंसि वा, पायपुंछणंसि वा, रयहरणंसि वा, गोच्छगंसि वा, उंडुयंसि वा, दंडगंसि वा, पीढगंसि वा, फलगंसि वा, सेज्जंसि वा, संथारगंसि वा, अन्नयरंसि वा, तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय एगंते अवणेज्जा, नो णं संघायमावज्जेज्जा॥२३॥

अन्वयार्थ- 'से भिक्खू वा से परिसागओ' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है, साधु अथवा साध्वी, कीडं वा=कीड़े-मकोड़े को, पयंगं वा=पतंगे को, कुंथुं वा=कुंथुवा को, पिवीलियं वा=चींटी को, हत्थंसि वा=हाथ पर, पायंसि वा=पाँव पर, बाहुंसि वा=भुजा पर, ऊरुंसि वा=जाँघ पर, उदरंसि वा=पेट पर, सीसंसि वा=सिर पर, वत्थंसि वा=वस्त्र पर, पडिग्गहंसि वा=पात्र पर कंबलंसि वा=कम्बल पर, पायपुंछणांसि वा=पैर पोंछने के उपकरण विशेष पर, रयहरणांसि वा=रजोहरण पर, गोच्छगांसि वा=पूँजनी पर या पात्रों को पोंछने के वस्त्र पर, उंडुयंसि वा=स्थण्डिल पात्र पर, दंडगांसि वा=दण्डे पर, पीढगांसि वा=चौकी पर, फलगांसि वा=पाटे पर, सेज्जांसि वा=शय्या पर, संथारगांसि वा=संथारे पर, वा=अथवा, तहप्पगारे=इसी प्रकार के, अन्नयरंसि वा=किसी दूसरे, उवगरणजाए=उपकरण पर पड़े हुए कीड़े आदि जीव को, तओ=उस स्थान से अर्थात् हाथ-पैर आदि पर से, संजयामेव=यतना पूर्वक, पडिलेहिय-पडिलेहिय=बार-बार भली प्रकार से प्रतिलेखना करके, पमज्जिय-पमज्जिय=बार-बार सम्यक् प्रकार से पूँज कर, एगंते=एकान्त स्थान में, अवणेज्जा=रख दे, किन्तु उन जीवों को, नो णं संघायमावज्जेज्जा=इस प्रकार इकट्ठा करके न रखें कि जिससे उन्हें पीड़ा हो॥23॥

अजयं चरमाणो उ, पाण-भूयाइँ हिंसई।

बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं॥२४॥

अजयं चिट्ठमाणो उ, पाण-भूयाइँ हिंसई।

बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं॥२५॥

अजयं आसमाणो उ, पाण-भूयाइँ हिंसई।

बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं॥२६॥

अजयं सुयमाणो उ, पाण-भूयाइँ हिंसई।

बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं॥२७॥

अजयं भुंजमाणो उ, पाण-भूयाइँ हिंसई।

बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं॥२८॥

अजयं भासमाणो उ, पाण-भूयाइँ हिंसई।

बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं॥२९॥

अन्वयार्थ- अजयं=अयतना पूर्वक, चरमाणो=चलता हुआ, चिट्ठमाणो=

खड़ा होता हुआ, आसमाणो=बैठता हुआ, सुयमाणो=सोता हुआ, भुंजमाणो=भोजन करता हुआ और, भासमाणो=बोलता हुआ प्राणी, पाणभूयाइँ=त्रस-स्थावर जीवों की, हिंसई=हिंसा करता है। उ=जिससे, पावयं=पाप, कम्मं=कर्म का, बंधई=बंध होता है। तं=वह पाप कर्म, से=उस प्राणी के लिए कडुयं=कटुक, फलं=फलदायी, होइ=होता है॥24-29॥

**भावार्थ-** इन छः गाथाओं में अयतनापूर्वक चलने, खड़ा रहने, बैठने, सोने आदि का कटु फल बतलाया गया है, जो स्वयं उसी आत्मा को भोगना पड़ता है।

**कहं चरे? कहं चिट्ठे? कहमासे? कहं सुवे?।**

**कहं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधई?॥३०॥**

**जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सुवे।**

**जयं भुंजंतो भासंतो, पाव कम्मं न बंधई॥३१॥**

**अन्वयार्थ-** अब शिष्य प्रश्न करता है- हे भगवन्! यदि ऐसा है, तो मुनि कहं=कैसे, चरे=चले, कहं=कैसे, चिट्ठे=खड़ा रहे, कहमासे=कैसे बैठे, कहं=कैसे, सुवे=सोवे, कहं=कैसे भुंजंतो=भोजन करता हुआ और भासंतो=बोलता हुआ, पावं=पाप, कम्मं=कर्म, न=नहीं, बंधई=बांधता है। जयं=यतना पूर्वक, जयमासे=यतनापूर्वक बैठे॥30-31॥

**सव्वभूयऽप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइँ पासओ।**

**पिहियासवस्स दंतस्स, पाव कम्मं न बञ्जइ॥३२॥**

**अन्वयार्थ-** सव्वभूयऽप्पभूयस्स=संसार के समस्त प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझने वाले, सम्मं=सम्यक् प्रकार से, भूयाइँ=सभी जीवों को, पासओ=देखने वाले, पिहियासवस्स=आश्रवों को रोकने वाले और, दंतस्स=इन्द्रियों को दमन करने वाले के, पाव=पाप, कम्मं=कर्म, न=नहीं, बञ्जइ=बंधता है॥32॥

**पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।**

**अन्नाणी किं काहिति?, किं वा नाहिइ छेय पावगं?॥३३॥**

**अन्वयार्थ-** पढमं=पहले, नाणं=ज्ञान है, तओ=उसके पश्चात्, दया=दया है, एवं=इस प्रकार, सव्वसंजए=सभी साधु, चिट्ठइ=आचरण करते हैं। अन्नाणी=सम्यक् ज्ञान से रहित अज्ञानी पुरुष, किं=क्या, काहिति=कर सकता है और, किं वा=कैसे, छेय पावगं=पुण्य और पाप को, नाहिइ=जान



सकता है॥३३॥

**भावार्थ-** सबसे पहला स्थान ज्ञान का है और उसके बाद दया अर्थात् क्रिया है। ज्ञानपूर्वक क्रिया से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। अज्ञानी, जिसे साध्य-साधन का भी ज्ञान नहीं है, वह क्या कर सकता है? वह अपने कल्याण और अकल्याण को भी कैसे समझ सकता है?

**सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।**

**उभयं पि जाणई सोच्चा, जं छेयं तं समायरे॥३४॥**

**अन्वयार्थ-** सोच्चा=सुनकर ही, कल्लाणं=कल्याण को जाणइ=जानता है, सोच्चा=सुनकर ही, पावगं=पाप को, जाणइ=जानता है और, उभयं पि=दोनों को भी, सोच्चा=सुनकर ही, जाणई=जानता है, अतः जं=जो, छेयं=आत्मा के लिए हितकारी हो, तं=उसका, समायरे=आचरण करे॥३४॥

**भावार्थ-** हिताहित का ज्ञान सुनकर ही होता है। इसलिए इनमें से जो श्रेष्ठ हो, उसी में प्रवृत्ति करनी चाहिए।

**जो जीवे वि न याणति, अजीवे वि न याणति।**

**जीवाऽजीवे अयाणंतो, कह सो नाहिइ संजमं?॥३५॥**

**अन्वयार्थ-** जो=जो, जीवे वि=जीव के स्वरूप को, न=नहीं, याणति=जानता और, अजीवे वि=अजीव के स्वरूप को भी, न=नहीं, याणति=जानता। जीवाजीवे=इस प्रकार जीव-अजीव के स्वरूप को, अयाणंतो=नहीं जानने वाला, सो=वह साधक, संजमं=संयम को, कह=कैसे, नाहिइ=जानेगा अर्थात् नहीं जान सकता॥३५॥

**जो जीवे वि वियाणति, अजीवे वि वियाणति।**

**जीवाऽजीवे वियाणंतो, सो हु नाहिइ संजमं॥३६॥**

**अन्वयार्थ-** जो=जो जीवे वि=जीव का स्वरूप वियाणति=जानता है तथा, अजीवे वि=अजीव का स्वरूप भी, वियाणति=जानता है। इस प्रकार, जीवाजीवे=जीव और अजीव के स्वरूप को, वियाणंतो=जानने वाला, सो=वह साधक, हु=निश्चय ही, संजमं=संयम के स्वरूप को, नाहिइ=जान सकेगा॥३६॥

**जया जीवमजीवे य, दो वि एए वियाणई।**

**तया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणई॥३७॥**

**अन्वयार्थ-** जया=जब आत्मा, जीवमजीवे=जीव और अजीव, य दो

वि एए=इन दोनों को, वियाणई=जान लेता है तथा=तब, सव्वजीवाण=सभी जीवों की, बहुविहं=बहुत भेदों वाली, गइं=नरक, तिर्यच आदि नानाविध गति को भी, जाणई=जान लेता है॥३७॥

भावार्थ- इस गाथा में तथा आगे की गाथाओं में ज्ञान प्राप्ति से लेकर मोक्ष प्राप्ति तक का क्रम बतलाया गया है।

जया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणई।

तया पुण्णं च पावं च, बंधं मोक्खं च जाणई॥३८॥

अन्वयार्थ- जया=जब आत्मा, सव्वजीवाण=सभी जीवों की, बहुविहं=बहुत भेदों वाली, गइं=नरक तिर्यच आदि नानाविध गति को, जाणई=जान लेता है, तथा=तब, पुण्णं=पुण्य, च=और पावं=पाप को, च=तथा, बंधं=बन्ध, च=और, मोक्खं=मोक्ष को भी, जाणई=जान लेता है॥३८॥

जया पुण्णं च पावं च, बंधं मोक्खं च जाणई।

तया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे॥३९॥

अन्वयार्थ- जया=जब, पुण्णं=पुण्य, च=और, पावं=पाप को, च=तथा, बंधं=बन्ध, च=और, मोक्खं=मोक्ष को भी, जाणई=जान लेता है, तथा=तब, जे दिव्वे=जो देव, य=और, जे माणुसे=मनुष्य संबंधी, भोए=काम-भोग हैं, उनकी, निव्विंदए=असारता को समझ कर उन्हें छोड़ देता है॥३९॥

जया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे।

तया जहति संजोगं, सऽब्भितर-बाहिरं॥४०॥

अन्वयार्थ- जया=जब, जे दिव्वे=जो देव, य=और, जे माणुसे=मनुष्य संबंधी, भोए=काम-भोगों की, निव्विंदए=असारता को समझ कर उन्हें छोड़ देता है, तथा=तब, सऽब्भितर-बाहिरं=राग-द्वेष कषाय रूप आभ्यन्तर और माता-पिता तथा सम्पत्ति रूप बाह्य, संजोगं=संयोग को, जहति=छोड़ देता है॥४०॥

जया जहति संजोगं, सऽब्भितर-बाहिरं।

तया मुंडे भवित्ताणं, पव्वाइ अणगारियं॥४१॥

अन्वयार्थ- जया=जब, सऽब्भितर-बाहिरं=आभ्यन्तर और बाह्य, संजोगं=संयोग को, जहति=छोड़ देता है, तथा=तब, मुण्डे=द्रव्य और भाव से

मुण्डित, भवित्ताणं=होकर, अणगारियं=अनगार वृत्ति को, पव्वाइ=ग्रहण करता है॥41॥

जया मुंडे भवित्ताणं, पव्वाइ अणगारियं।

तया संवरमुक्कट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं॥४२॥

अन्वयार्थ- जया=जब, मुण्डे=द्रव्य और भाव से मुण्डित, भवित्ताणं=होकर, अणगारियं=अनगार वृत्ति, पव्वाइ=ग्रहण करता है, तया=तब, उक्कट्ठं=उत्कृष्ट और, अणुत्तरं=सर्वश्रेष्ठ, संवर धम्मं=संवर धर्म को, फासे=प्राप्त करता है॥42॥

जया संवरमुक्कट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं।

तया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं॥४३॥

अन्वयार्थ- जया=जब, उक्कट्ठं=उत्कृष्ट और, अणुत्तरं=सर्वश्रेष्ठ, संवर धम्मं=संवर धर्म को, फासे=प्राप्त करता है। तया=तब, अबोहिकलुसं कडं=आत्मा के मिथ्यात्व से उपार्जित किए हुए, कम्मरयं=कर्म रूपी रज को, धुणइ=झाड़ देता है॥43॥

जया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं।

तया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छई॥४४॥

अन्वयार्थ- जया=जब, अबोहिकलुसं कडं=आत्मा के मिथ्यात्व परिणाम द्वारा उपार्जित किए हुए, कम्मरयं=कर्म रूपी रज को, धुणइ=झाड़ देता है, तया=तब, सव्वत्तगं=सभी पदार्थों को जानने वाले, नाणं=केवलज्ञान, च=और, दंसणं=केवलदर्शन को, चाभिगच्छई=प्राप्त कर लेता है॥44॥

जया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छई।

तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली॥४५॥

अन्वयार्थ- जया=जब, सव्वत्तगं=सभी पदार्थों को जानने वाले, नाणं=केवलज्ञान, च=और, दंसणं=केवलदर्शन को, चाभिगच्छई=प्राप्त कर लेता है, तया=तब, जिणो=राग-द्वेष का विजेता, केवली=केवलज्ञानी होकर, लोगं=लोक, च=और अलोगं=अलोक के स्वरूप को भी, जाणइ=जान लेता है॥45॥

जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली।

तया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जई॥४६॥

अन्वयार्थ- जया=जब, जिणो=राग=द्वेष का विजेता केवली=केवलज्ञानी होकर, लोगं=लोक, च=और, अलोगं=अलोक को, जाणइ=जान लेता है, तया=तब आत्मा, जोगे=मन, वचन और काया के योगों का, निरुंभित्ता=निरोध करके, सेलेसिं=शैलेशीकरण को, पडिवज्जई=प्राप्त करता है॥46॥

जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जई।

तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ॥४७॥

अन्वयार्थ- जया=जब, जोगे=मन, वचन और काया के योगों का, निरुंभित्ता=निरोध करके, सेलेसिं=शैलेशीकरण को, पडिवज्जई=प्राप्त करता है, तया=तब आत्मा, नीरओ=कर्म रूपी रज से रहित होकर और, कम्मं=समस्त कर्मों का, खवित्ताणं=क्षय करके, सिद्धिं=मोक्ष में, गच्छइ=चला जाता है॥47॥

जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ।

तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो भवइ सासओ॥४८॥

अन्वयार्थ- जया=जब, नीरओ=कर्म रूपी रज से रहित होकर और कम्मं=समस्त कर्मों का, खवित्ताणं=क्षय करके, सिद्धिं=मोक्ष, गच्छइ=चला जाता है, तया=तब आत्मा, लोगमत्थयत्थो=लोक के अग्रभाग पर स्थित, सासओ=शाश्वत, सिद्धो=सिद्ध, भवइ=हो जाता है॥48॥

सुहसायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स निगामसाइस्स।

उच्छोलणापहोविस्स, दुलहा सोग्गई तारिसगस्स॥४९॥

अन्वयार्थ- सुहसायगस्स=सुख और साता में आसक्त रहने वाले, सायाउलगस्स=सुख और साता के लिए व्याकुल रहने वाले, निगामसाइस्स=अत्यंत सोने वाले, उच्छोलणापहोविस्स=शरीर की विभूषा के लिए हाथ-पाँव आदि धोने वाले, तारिसगस्स समणस्स=उस साधु को, सोग्गई=सुगति मिलना, दुलहा=दुर्लभ है॥49॥

तवोगुणपहाणस्स, उज्जुमइ-खंति-संजमरयस्स।

परीसहे जिणंतस्स, सुलहा सोग्गई तारिसगस्स॥५०॥

अन्वयार्थ- तवोगुणपहाणस्स=तप रूपी गुणों से प्रधान, उज्जुमइ=सरल बुद्धि वाले, खंति-संजमरयस्स=क्षमा और संयम में रत, परीसहे=परीषहों को, जिणंतस्स=जीतने वाले, तारिसगस्स=साधु को, सोग्गई=सुगति, सुलहा=सुलभ है॥50॥

भावार्थ-तप संयम में अनुरक्त, सरल प्रवृत्ति वाले तथा बाइस परीषहों को समभावपूर्वक सहन करने वाले साधक के लिए सुगति प्राप्त होना सरल है।

इच्छेयं छज्जीवणियं, सम्मद्दिट्ठी सया जए।

दुलहं लभित्तु सामण्णं, कम्मुणा ण विराहेज्जासि॥५१॥ त्ति बेमि।

अन्वयार्थ- सया=सदा, जए=यतनापूर्वक प्रवृत्ति करने वाला, सम्मद्दिट्ठी=सम्यग्दृष्टि, दुलहं=दुर्लभ, सामण्णं=साधुपने को, लभित्तु=प्राप्त करके, इच्छेयं=पूर्वोक्त स्वरूप वाले, छज्जीवणियं=छः जीवनिकाय की, कम्मुणा=मन, वचन, काया से, ण विराहेज्जासि=विराधना न करे॥51॥ त्ति बेमि= हे जम्बू! जैसे मैंने भगवान् से सुना है, वैसा ही कहता हूँ।



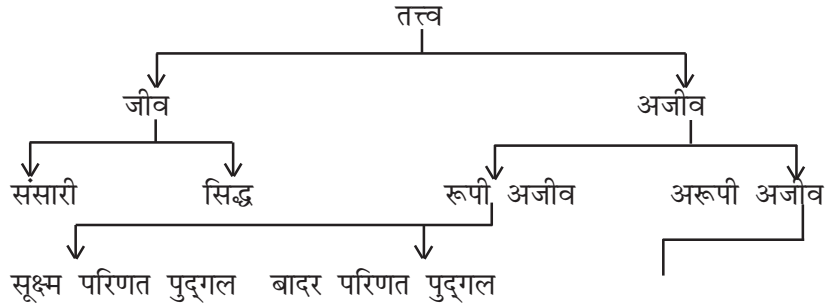
## कर्म स्वरूप

कर्म क्या है? इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझने के लिए 4 द्वारों के माध्यम से इसका वर्णन किया जा रहा है-

### द्वारों के नाम

1. तत्त्व का स्वरूप
2. ग्रहण योग्य वर्गणाएँ
3. शक्ति सम्पन्न कौन? कर्म या आत्मा?
4. कर्मों का परिचय

### (1) तत्त्व का स्वरूप



- |                             |                       |                            |
|-----------------------------|-----------------------|----------------------------|
| 1. परमाणु                   | (अनंत प्रदेशी स्कन्ध) | 1. धर्मास्तिकाय            |
| 2. द्वि प्रदेशी स्कन्ध      |                       | 2. धर्मास्तिकाय का देश     |
| 3. त्रि प्रदेशी स्कन्ध      |                       | 3. धर्मास्तिकाय के प्रदेश  |
| 4. चतुः प्रदेशी स्कन्ध      |                       | 4. अधर्मास्तिकाय           |
| 5. पञ्च प्रदेशी स्कन्ध      |                       | 5. अधर्मास्तिकाय का देश    |
| 6. षट् प्रदेशी स्कन्ध       |                       | 6. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश |
| 7. सप्त प्रदेशी स्कन्ध      |                       | 7. आकाशास्तिकाय            |
| 8. अष्ट प्रदेशी स्कन्ध      |                       | 8. आकाशास्तिकाय का देश     |
| 9. नव प्रदेशी स्कन्ध        |                       | 9. आकाशास्तिकाय के प्रदेश  |
| 10. दस प्रदेशी स्कन्ध       |                       | 10. काल                    |
| 11. संख्यात प्रदेशी स्कन्ध  |                       |                            |
| 12. असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध |                       |                            |
| 13. अनंत प्रदेशी स्कन्ध     |                       |                            |

**परिभाषाएँ:-**

**द्वार:-** प्रवेश, मार्ग, रास्ता। जिसके माध्यम से विषय में प्रवेश किया जाए अर्थात् विषय को जाना जाए, उसे द्वार कहते हैं।

**तत्त्व:-** वस्तु (जीव, अजीव) के वास्तविक स्वरूप को तत्त्व कहते हैं।

**जीव:-** जो चेतना, संवेदना, शक्तियुक्त हो, उसे जीव कहते हैं।

**अजीव:-** जो सर्वथा चेतना शून्य (जड़) हो, उसे अजीव कहते हैं।

**संसारी:-** जो जीव कर्मों से युक्त है, उसे संसारी कहते हैं। हम सभी संसारी हैं।

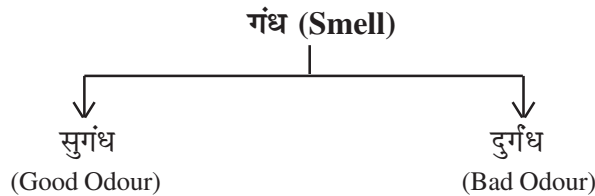
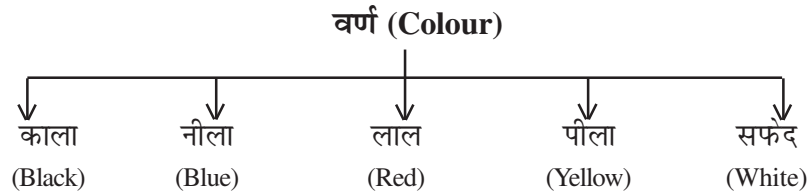
**सिद्ध:-** जो जीव कर्मों से मुक्त हैं, उन्हें सिद्ध कहते हैं।

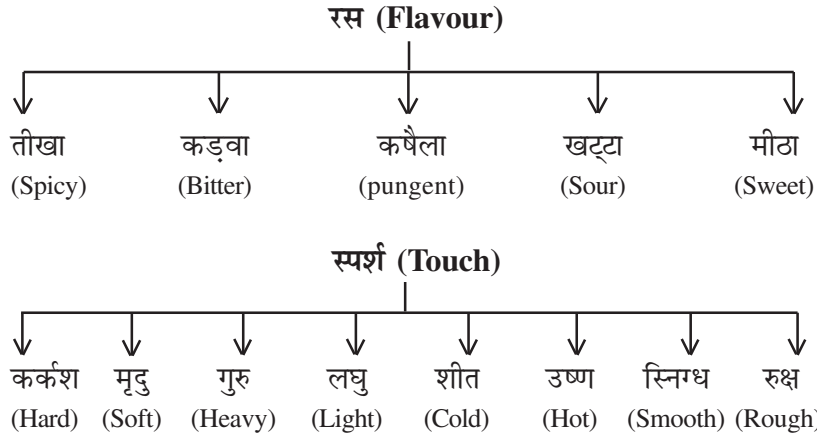
**रूपी अजीव:-** जिस अजीव पदार्थ में वर्ण-गंध-रस स्पर्श हो, उसे रूपी अजीव कहते हैं।

**अरूपी अजीव:-** जिस अजीव पदार्थ में वर्ण-गंध-रस-स्पर्श न हो, उसे अरूपी अजीव कहते हैं।

(अरूपी अजीव के भेदों का विस्तृत वर्णन तत्त्व का ताला ज्ञान की कुंजी भाग-1 व 25 बोल की पुस्तक में देखें।)

**पुद्गल:-** जिसमें वर्ण-गंध-रस-स्पर्श हो, जो मिलते-बिखरते हों, उसे पुद्गल कहते हैं। रूपी अजीव ही पुद्गल कहलाते हैं। हम जिन-जिन पदार्थों को देखते हैं वे सब पुद्गल ही हैं।





**परमाणु:-** पुद्गल के सूक्ष्मतम रूप को जिसका टुकड़ा न (Indivisible) किया जा सके, उसे परमाणु कहते हैं।

**सूक्ष्म परिणत पुद्गल:-** जिसमें जघन्य (Minimum) 1 वर्ण, 1 गंध, 1 रस, 2 स्पर्श, (शीत/उष्ण, स्निग्ध/रुक्ष एवं उत्कृष्ट (Maximum) 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस, 4 स्पर्श (शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष) हो, उसे सूक्ष्म परिणत पुद्गल कहते हैं।)

सूक्ष्म परिणत पुद्गल में कर्कश, मृदु, गुरु, लघु- ये चार स्पर्श नहीं होते हैं।

**स्कंध:-** स्कंध=समूह (Group), 2 या 2 से अधिक प्रदेशों के परस्पर जुड़े हुए समूह को स्कंध कहते हैं।

**प्रदेश:-** स्कंध से जुड़ा हुआ स्कंध का अविभाज्य अंश प्रदेश कहलाता है।

**अथवा**

स्कंध के सूक्ष्मतम भाग को जिसका फिर हिस्सा न किया जा सके, उसे प्रदेश कहते हैं।

**अथवा**

स्वतंत्र परमाणु जब दूसरे परमाणु या स्कंध से जुड़ जाता है तब उसे प्रदेश कहते हैं।

**परमाणु और प्रदेश में अन्तर-** प्रदेश स्कंध से जुड़े हुए होते हैं जबकि परमाणु स्कंध से अलग स्वतंत्र होता है।



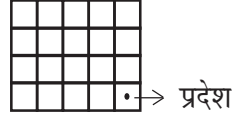
### परमाणु

अपने आप में ही स्वतंत्र

□ → परमाणु

### प्रदेश

स्कंध से जुड़ा हुआ



**द्वि प्रदेशी स्कंध-** दो प्रदेशों (परमाणु) के परस्पर जुड़े हुए समूह को द्वि प्रदेशी स्कंध कहते हैं। □□

**त्रि प्रदेशी स्कंध-** तीन प्रदेशों के परस्पर जुड़े हुए समूह को त्रि प्रदेशी स्कंध कहते हैं। □□□

**चतुः प्रदेशी स्कंध-** चार प्रदेशों के परस्पर जुड़े हुए समूह को चार प्रदेशी स्कंध कहते हैं। □□□□

**पञ्च प्रदेशी स्कंध-** पाँच प्रदेशों के परस्पर जुड़े हुए समूह को पञ्च प्रदेशी स्कंध कहते हैं। □□□□□

**षट् प्रदेशी स्कंध-** छः प्रदेशों के परस्पर जुड़े हुए समूह को षट् प्रदेशी स्कंध कहते हैं। □□□□□□

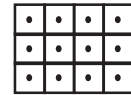
**सप्त प्रदेशी स्कंध-** सात प्रदेशों के परस्पर जुड़े हुए समूह को सप्त प्रदेशी स्कंध कहते हैं। □□□□□□□

**अष्ट प्रदेशी स्कंध-** आठ प्रदेशों के परस्पर जुड़े हुए समूह को अष्टप्रदेशी स्कंध कहते हैं। □□□□□□□□

**नव प्रदेशी स्कंध-** नौ प्रदेशों के परस्पर जुड़े हुए समूह को नव प्रदेशी स्कंध कहते हैं। □□□□□□□□□

**दस प्रदेशी स्कंध-** दस प्रदेशों के परस्पर जुड़े हुए समूह को दस प्रदेशी स्कंध कहते हैं। □□□□□□□□□□

**संख्यात प्रदेशी स्कंध-** संख्यात प्रदेशों के परस्पर जुड़े हुए समूह को संख्यात प्रदेशी स्कंध कहते हैं। 11 प्रदेशी स्कंध से लेकर उत्कृष्ट संख्यात प्रदेशी स्कंध तक के सम्पूर्ण स्कंध संख्यात प्रदेशी स्कंध कहलाते हैं।



**नोट-** द्विप्रदेशी स्कंध से लेकर संख्यात प्रदेशी स्कंध तक बताये गये चित्र उदाहरण के रूप में हैं, इनके यथासंभव अन्य आकार भी बन सकते हैं।

**असंख्यात प्रदेशी स्कंध-** असंख्यात प्रदेशों के परस्पर जुड़े हुए समूह को असंख्यात प्रदेशी स्कंध कहते हैं।

**अनंत प्रदेशी स्कंध-** अनंत प्रदेशों के परस्पर जुड़े हुए समूह को अनंत प्रदेशी स्कंध कहते हैं।

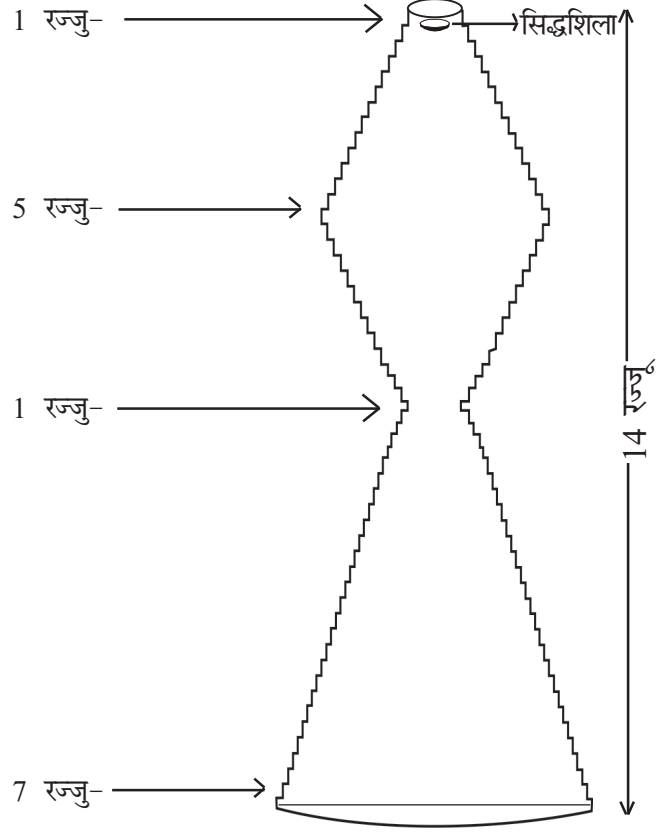
**बादर परिणत पुद्गल-** जिसमें जघन्य 1 वर्ण, 1 गंध, 1 रस, 4 स्पर्श (कर्कश/मृदु, गुरु/लघु, शीत/उष्ण, स्निग्ध/रुक्ष) एवं उत्कृष्ट 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस, 8 स्पर्श हो उसे बादर परिणत पुद्गल कहते हैं। बादर परिणत पुद्गल अनंत प्रदेशी ही होता है।

**असंख्यात (Uncountable)-** जिसकी गिनती न की जा सके।

**अनंत (Infinite)-** जिसका अंत ही न हो।

संसारी व सिद्ध दोनों ही प्रकार के जीव लोक में अनंत हैं। संसारी जीव सम्पूर्ण लोक में ठसाठस भरे हुए हैं तथा सिद्ध भगवान लोक के अग्रभाग पर स्थित हैं। रूपी अजीव के परमाणु आदि सभी भेद लोक में अनंत हैं अर्थात् परमाणु पुद्गल लोक में अनंत हैं, द्विप्रदेशी स्कंध भी अनंत हैं, त्रिप्रदेशी स्कंध भी अनंत हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म परिणत पुद्गल के सभी भेद अनंत हैं और बादर परिणत पुद्गल भी अनंत हैं।

## लोक का चित्र



**लोक-** जिसमें धर्मास्तिकाय आदि हो उसे लोक कहते हैं।  
रज्जु=असंख्यात योजन

## (2) वर्गणा

**वर्गणा-** परमाणुओं के अथवा तुल्य प्रदेशी स्कंधों के समुदाय को वर्गणा कहते हैं।

### ग्रहण योग्य वर्गणाएँ-

कर्म पुद्गल हैं परन्तु कर्म कितने प्रदेश वाले पुद्गल हैं तथा वे कितने सूक्ष्म हैं आदि वर्णन स्पष्ट रूप से समझने के लिए ग्रहण योग्य वर्गणाओं का स्वरूप समझना आवश्यक है। अतः द्वितीय द्वार के माध्यम से ग्रहण योग्य वर्गणाओं का स्वरूप स्पष्ट करते हैं।

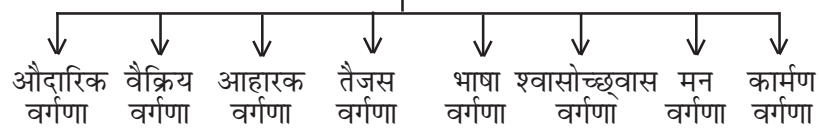
परमाणु से लेकर असंख्यात प्रदेशी स्कंध तक के पुद्गलों को जीव ग्रहण नहीं करता है। परन्तु अभव्य से अनंत गुणा एवं सिद्धों के अनंतवें भाग प्रमाण वाले अनंत प्रदेशी स्कंधों को जीव ग्रहण करता है। जीव के ग्रहण योग्य वर्गणाएँ 8 हैं।

### परिभाषाएँ-

**ग्रहण योग्य-** जिन वर्गणाओं को जीव ग्रहण करता है, वे वर्गणाएँ ग्रहण योग्य वर्गणाएँ कहलाती हैं।

**अभव्य-** जो कभी मोक्ष नहीं जाएगा। सम्पूर्ण जीवों की संख्या में अभव्य जीव आटे में नमक के समान भी नहीं है। जैसे- मूंग को बहुत पकाने पर भी मूंग में जो कोरडू होता है वह पकता नहीं है। उसी प्रकार अभव्य के अन्तर्मन में यह विचार कभी उत्पन्न ही नहीं होता कि मैं मोक्ष जाऊँ।

### ग्रहण योग्य वर्गणाएँ



**औदारिक वर्गणा-** जिन पुद्गलों के माध्यम से जीव औदारिक शरीर का निर्माण करता है, उन्हें औदारिक वर्गणा कहते हैं।

**वैक्रिय वर्गणा-** जिन पुद्गलों के माध्यम से जीव वैक्रिय शरीर का निर्माण

करता है, उन्हें वैक्रिय वर्गणा कहते हैं।

**आहारक वर्गणा-** जिन पुद्गलों के माध्यम से जीव आहारक शरीर का निर्माण करता है, उन्हें आहारक वर्गणा कहते हैं।

**तैजस वर्गणा-** जिन पुद्गलों के माध्यम से जीव तैजस शरीर का निर्माण करता है, उन्हें तैजस वर्गणा कहते हैं।

**भाषा वर्गणा-** जिन पुद्गलों के माध्यम से जीव वचन योग में प्रवृत्त होता है अर्थात् बोलता है, उन्हें भाषा वर्गणा कहते हैं।

**श्वासोच्छ्वास वर्गणा-** जिन पुद्गलों के माध्यम से जीव उच्छ्वास-निःश्वास की क्रिया करता है, उन्हें श्वासोच्छ्वास वर्गणा कहते हैं।

**मन वर्गणा-** जिन पुद्गलों के माध्यम से जीव चिन्तन मनन करता है, उन्हें मन वर्गणा कहते हैं।

**कार्मण वर्गणा-** जिन पुद्गलों के माध्यम से जीव कार्मण शरीर का निर्माण करता है, उन्हें कार्मण वर्गणा कहते हैं।

### पाँच शरीर की परिभाषा

1. **औदारिक शरीर-** औदारिक वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं अथवा उदार अर्थात् स्थूल पुद्गलों से बने हुए शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

**Note-** जीव के द्वारा ग्रहण योग्य आठों वर्गणाओं में औदारिक वर्गणा सबसे स्थूल होती है, इसलिए औदारिक शरीर की दूसरी परिभाषा में इस प्रकार कहा है कि स्थूल पुद्गलों से बने हुए शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

**प्रश्न-** औदारिक शरीर किसको प्राप्त होता है?

**उत्तर-** सभी मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों को जन्म से औदारिक शरीर प्राप्त होता है।

2. **वैक्रिय शरीर-** वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को वैक्रिय शरीर कहते हैं अथवा वैक्रिय=विविध या विशिष्ट प्रकार की क्रिया। जिस शरीर से विविध या विशिष्ट प्रकार की (छोटा-बड़ा, एक-अनेक, दृश्य-अदृश्य आदि रूप) क्रियाएँ की जा सकती हैं, उसे वैक्रिय शरीर कहते हैं।

**प्रश्न-** वैक्रिय शरीर किसको प्राप्त होता है?

उत्तर- सभी नैरयिकों और देवों को जन्म से वैक्रिय शरीर प्राप्त होता है तथा मनुष्य और तिर्यञ्च को भी लब्धि से वैक्रिय शरीर प्राप्त हो सकता है।

3. **आहारक शरीर-** आहारक वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को आहारक शरीर कहते हैं।

**प्रश्न-** आहारक शरीर किसको प्राप्त होता है?

उत्तर- आहारक शरीर किसी को भी जन्म से प्राप्त नहीं होता है। जिन मुनियों को 14 पूर्वों का ज्ञान होता है उनमें से किन्हीं-किन्हीं मुनियों को आहारक लब्धि प्राप्त होती है। आहारक लब्धिधारी वे मुनिराज आहारक वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके आहारक शरीर का निर्माण कर सकते हैं। आहारक शरीर स्फटिक रत्न के समान अति निर्मल (Crystal Clear) होता है। आहारक शरीर की अवगाहना ज. देशोन 1 हाथ, उ. 1 हाथ की होती है। 1 भव में अधिक से अधिक 2 बार ही आहारक शरीर का निर्माण कर सकते हैं। लब्धिधारी मुनिराज 4 कारणों से आहारक शरीर का निर्माण करते हैं- 1. तीर्थकरों की ऋद्धि दर्शन, 2. जीवदया, 3. संशय निवारण, 4. सूक्ष्म पदार्थों में अवगाहन (सूक्ष्म पदार्थों को समझने के लिए)।

4. **तैजस शरीर-** तैजस वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को तैजस शरीर कहते हैं।

5. **कर्मण शरीर-** कर्मण वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को कर्मण शरीर कहते हैं अथवा कर्मों से बने हुए शरीर को कर्मण शरीर कहते हैं।

**प्रश्न-** तैजस व कर्मण शरीर किसको प्राप्त होता है?

उत्तर- संसार के सभी जीवों के तैजस व कर्मण शरीर होता है।

### **ग्रहण योग्य व अग्रहण योग्य वर्गणाओं का स्पष्टीकरण**

**अग्रहण योग्य वर्गणा-** परमाणु से लेकर असंख्यात प्रदेशी स्कंध तक की सभी वर्गणाएँ जीव के द्वारा अग्रहण योग्य हैं, यावत् औदारिक शरीर की जघन्य ग्रहण योग्य वर्गणा में जितने प्रदेश होते हैं उससे 1 प्रदेश कम तक की सभी अनंत प्रदेशी वर्गणाएँ भी औदारिक शरीर की ग्रहण योग्य वर्गणाओं की अपेक्षा अल्प प्रदेश वाली एवं स्थूल परिणाम वाली होने से जीव द्वारा अग्रहण योग्य है।

**औदारिक शरीर की ग्रहण योग्य वर्गणा-** अभवी से अनंत गुणा व सिद्धों के अनंतवें भाग प्रमाण अनंत प्रदेशी स्कंध औदारिक शरीर की ग्रहण योग्य जघन्य पहली वर्गणा है। उससे 1 प्रदेशाधिक अनंत प्रदेशी स्कंध की औदारिक शरीर की द्वितीय ग्रहण योग्य वर्गणा है। इस प्रकार एक-एक प्रदेश बढ़ते हुए क्रमशः अनंत वर्गणाएँ औदारिक शरीर के ग्रहण योग्य होती हैं। औदारिक शरीर की ग्रहण योग्य जघन्य वर्गणा से अनंतवें भाग अधिक प्रदेश वाली वर्गणा औदारिक शरीर की ग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा है।

**अग्रहण योग्य वर्गणा-** औदारिक शरीर की उत्कृष्ट ग्रहण योग्य वर्गणा में जितने प्रदेश होते हैं उससे 1 अधिक प्रदेश वाली वर्गणा जीव द्वारा ग्रहण योग्य नहीं होती है क्योंकि औदारिक शरीर की ग्रहण योग्य वर्गणा की अपेक्षा अधिक प्रदेश वाली होने से इनका परिणमन औदारिक शरीर की ग्रहण योग्य वर्गणाओं की अपेक्षा सूक्ष्म होता है तथा वैक्रिय की ग्रहण योग्य वर्गणाओं की अपेक्षा अल्प प्रदेशी होने से वैक्रिय की ग्रहण योग्य वर्गणाओं की अपेक्षा इनका परिणमन बादर होता है। इस प्रकार 2 अधिक प्रदेश वाली वर्गणा भी जीव द्वारा ग्रहण योग्य नहीं होती, यावत् अग्रहण योग्य जघन्य वर्गणा में जितने प्रदेश होते हैं उससे अनंत गुणा अधिक प्रदेश वाली वर्गणा भी जीव द्वारा अग्रहण योग्य है।

**वैक्रिय की ग्रहण योग्य वर्गणा-** अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा में जितने प्रदेश हैं उससे 1 अधिक प्रदेश वाली वर्गणा वैक्रिय की जघन्य ग्रहण योग्य वर्गणा है यावत् जघन्य वर्गणा से अनंतवां भाग अधिक प्रदेश वाली वर्गणा वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट ग्रहण योग्य वर्गणा है।

**अग्रहण योग्य वर्गणा-** वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट ग्रहण योग्य वर्गणा से 1 अधिक प्रदेश वाली वर्गणा जघन्य अग्रहण योग्य वर्गणा है यावत् जघन्य वर्गणा से अनंत गुणा अधिक प्रदेश वाली वर्गणा अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा है। उपर्युक्त वर्गणाएँ वैक्रिय की अपेक्षा बहु प्रदेश वाली होने से सूक्ष्म हैं तथा आहारक शरीर की अपेक्षा अल्प प्रदेश वाली होने से स्थूल हैं इसलिए अग्रहण योग्य हैं।

**आहारक शरीर की ग्रहण योग्य वर्गणा-** अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा में जितने प्रदेश हैं उससे 1 अधिक प्रदेश वाली वर्गणा आहारक शरीर की जघन्य ग्रहण योग्य वर्गणा है यावत् जघन्य वर्गणा से अनंतवां भाग





अधिक प्रदेश वाली वर्गणा श्वासोच्छ्वास की उत्कृष्ट वर्गणा है।

**अग्रहण योग्य वर्गणा-** श्वासोच्छ्वास की उत्कृष्ट ग्रहण योग्य वर्गणा से 1 अधिक प्रदेश वाली वर्गणा जघन्य अग्रहण योग्य वर्गणा है यावत् जघन्य वर्गणा से अनंत गुणा अधिक प्रदेश वाली वर्गणा अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा है। उपर्युक्त वर्गणाएँ श्वासोच्छ्वास की अपेक्षा बहुप्रदेश वाली होने से सूक्ष्म है तथा मन की अपेक्षा अल्प प्रदेश वाली होने से स्थूल है इसलिए अग्रहण योग्य है।

**मन की ग्रहण योग्य वर्गणा-** अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा में जितने प्रदेश हैं उससे 1 अधिक प्रदेश वाली वर्गणा मन की जघन्य ग्रहण योग्य वर्गणा है यावत् जघन्य वर्गणा से अनंतवां भाग अधिक प्रदेश वाली वर्गणा मन की उत्कृष्ट ग्रहण योग्य वर्गणा है।

**अग्रहण योग्य वर्गणा-** मन की उत्कृष्ट ग्रहण योग्य वर्गणा से 1 अधिक प्रदेश वाली वर्गणा जघन्य अग्रहण योग्य वर्गणा है यावत् जघन्य वर्गणा से अनन्त गुणा अधिक प्रदेश वाली वर्गणा अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा है। उपर्युक्त वर्गणाएँ मन की अपेक्षा बहुप्रदेश वाली होने से सूक्ष्म है तथा कार्मण की अपेक्षा अल्प प्रदेश वाली होने से स्थूल है इसलिए अग्रहण योग्य है।

**कार्मण शरीर की ग्रहण योग्य वर्गणा-** अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा में जितने प्रदेश हैं उससे 1 अधिक प्रदेश वाली कार्मण की जघन्य ग्रहण योग्य वर्गणा है यावत् जघन्य वर्गणा से अनंतवां भाग अधिक प्रदेश वाली वर्गणा कार्मण की उत्कृष्ट ग्रहण योग्य वर्गणा है।

औदारिक आदि वर्गणाएँ अवगाहना के आधार पर उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती जाती है एवं उनमें प्रदेशों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है अर्थात् औदारिक वर्गणा की अपेक्षा वैक्रिय वर्गणा की अवगाहना कम होती है लेकिन प्रदेशों की संख्या अधिक होती है। इस तरह आगे की वर्गणाओं के बारे में भी समझना चाहिए। इसे एक उदाहरण के माध्यम से भी समझ सकते हैं। जैसे- रूई, थर्माकोल, रबर, लकड़ी, मिट्टी, पत्थर, लोहा एवं हीरा अमुक परिमाण में लेने पर भी उत्तरोत्तर आकार छोटा होता जाता है। लेकिन घनत्व (Density) बढ़ता जाता है। उसी प्रकार औदारिक आदि वर्गणाओं के बारे में समझा जा सकता है।

ग्रहण योग्य वर्गणाओं के प्रदेशों एवं अवगाहना का तुलनात्मक चित्रण

वर्गणा	उदाहरण	अवगाहना	प्रदेश
1. औदारिक	रुई		
2. वैक्रिय	थर्माकोल		
3. आहारक	रबर		
4. तैजस	लकड़ी		
5. भाषा	मिट्टी		
6. श्वासोच्छ्वास	पत्थर		
7. मन	लोहा		
8. कार्मण	हीरा		

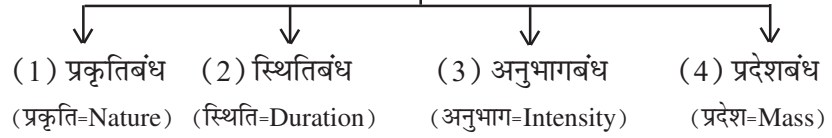
### (3) शक्ति सम्पन्न कौन? कर्म या आत्मा?

कषाय व योग के निमित्त से कार्मण वर्गणा के जो पुद्गल आत्मा के साथ बंध चुके हैं वे कर्म कहलाते हैं।

**जिज्ञासा-** कर्म के वशीभूत होकर जीव विविध गति, योनि आदि में परिभ्रमण करता है, विविध प्रकार के सुख दुःखादि का अनुभव करता है तो क्या आत्मा से कर्म अधिक शक्ति सम्पन्न है?

**समाधान-** नहीं! कर्म आत्मा से अधिक शक्ति सम्पन्न नहीं है। कर्म तो पुद्गल है, कर्म में स्वयं में इतनी शक्ति नहीं होती है कि वह जीव को विविध गति, योनि आदि में परिभ्रमण कराये, विविध सुख दुःखादि का अनुभव कराये। वस्तुतः कर्म पुद्गलों में विविध शक्ति उत्पन्न करने वाली आत्मा ही है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है- सकषायी जीवों के आत्मा के साथ कर्मों का बंध 4 प्रकार का होता है।\*

#### बंध



1. **प्रकृति बंध-** प्रकृति=स्वभाव। जीव के द्वारा गृह्यमाण (ग्रहण किये जा रहे) कार्मण वर्गणा के पुद्गलों में भिन्न-भिन्न स्वभाव को स्थापित करना प्रकृति बंध है।

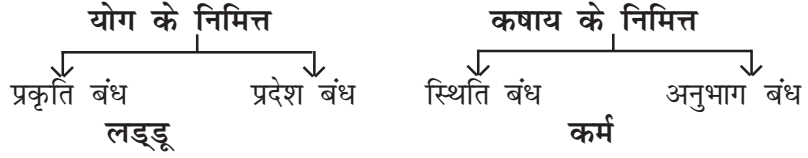
2. **स्थिति बंध-** जीव के द्वारा गृह्यमाण (ग्रहण किये जा रहे) कार्मण वर्गणा के पुद्गलों के आत्मा के साथ बने रहने के कालमान को निर्धारित करना स्थिति बंध है।

3. **अनुभाग बंध-** जीव के द्वारा गृह्यमाण (ग्रहण किये जा रहे) कार्मण वर्गणा के पुद्गलों में (घाती-अघाती, शुभ-अशुभ) फल देने की न्यूनाधिक शक्ति उत्पन्न करना अनुभाग बंध है।

4. **प्रदेश बंध-** जीव के द्वारा कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को न्यूनाधिक ग्रहण करना प्रदेश बंध है।

**\* टिप्पणी-** अनन्तरोदिता: संसारादयो भावाः कर्मवतां भवन्तीति चउच्चिहे बंधे इत्यादि कर्म प्रकारणमारादेकसूत्रात् प्रकटं चैतत् नवरं सकषायत्वात् जीवस्य कर्मणो योग्यानां पुद्गलानां बंधनम् आदानं बन्धः।

श्रीमत् स्थानांग सूत्र उद्देशक-2 श्री अभयदेवसूरि विरचित टीका पृ. सं.-374



1. **प्रकृति बंध**- किसी लड्डू का स्वभाव वायु का नाश करना होता है, किसी लड्डू का स्वभाव कफ का नाश करना होता है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न स्वभाव के आधार पर लड्डुओं का वर्गीकरण होता है।

2. **स्थिति बंध**- कोई लड्डू एक माह तक प्रभावशाली रहता है, कोई एक सप्ताह तक, इस प्रकार भिन्न-भिन्न लड्डुओं की भिन्न-भिन्न काल मर्यादा होती है।

3. **अनुभाग बंध**- कोई लड्डू अधिक मीठा होता है, कोई कम, कोई लड्डू अधिक कड़वा होता है, कोई कम, इस प्रकार भिन्न-भिन्न लड्डुओं का भिन्न-भिन्न रस होता है।

4. **प्रदेश बंध**- कोई लड्डू 200 ग्राम का होता है, कोई 1/2 किग्रा का होता है इस प्रकार भिन्न-भिन्न लड्डुओं का भिन्न-भिन्न परिमाण होता है।

किसी कर्म का स्वभाव आत्मा के ज्ञान गुण को ढकना होता है, किसी कर्म का स्वभाव आत्मा को हिताहित के ज्ञान से शून्य बनाना होता है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न स्वभाव के आधार पर कर्म प्रकृतियों का वर्गीकरण करना प्रकृति बंध है।

कोई कर्म 100 वर्ष तक आत्मा के साथ लगा रहता है, कोई 50 वर्ष तक, इस प्रकार भिन्न-भिन्न कर्म की भिन्न-भिन्न काल मर्यादा तय करना स्थिति बंध है।

किसी कर्म का रस अधिक मधुर होता है, किसी का कम, किसी कर्म का रस अधिक कड़वा होता है किसी का कम, इस प्रकार भिन्न-भिन्न कर्मों में भिन्न-भिन्न रस को उत्पन्न करना अनुभाग बंध है। जीव किसी समय कम कर्मण वर्गणाओं को ग्रहण करता है, किसी समय अधिक, इस प्रकार भिन्न परिमाण में कर्मण वर्गणाओं को ग्रहण करना प्रदेश बंध है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कर्मण वर्गणा के पुद्गलों में जो शक्ति उत्पन्न होती है वह कषाय व योग के निमित्त से होती है। आत्मा के शुभाशुभ परिणाम के आधार पर ही कषाय व योग की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार मूलतः कर्मण वर्गणा के पुद्गलों में शक्ति उत्पन्न करने वाली आत्मा ही है एवं सभी आत्माओं में इतनी शक्ति विद्यमान है कि वह पूर्व में बंधे हुए सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर सकती है।

## (4) कर्मों का परिचय

**कर्मों का परिचय-** जिस प्रकार किसी व्यक्ति के यदि आठ शत्रु हों और वह उन सब पर विजय प्राप्त करना चाहता है तो वह सबसे पहले आठों का परिचय प्राप्त करेगा, उनके स्वभाव को अच्छे से जानेगा, किसका प्रभाव अधिक है? किसका कम है? किस शत्रु को जीतने के बाद शेष शत्रुओं को जीतना आसान है? आदि सारी बातों की अच्छे से जानकारी करने के पश्चात् वह सबसे पहले उसी शत्रु को जीतेगा जिससे सबसे ज्यादा खतरा हो और जिसको जीतने के बाद शेष सातों को जीतना अत्यन्त आसान हो। इसी प्रकार हम अपने आठों कर्मों पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं तो इसके लिए यह आवश्यक है कि हम आठों कर्मों का अच्छे से परिचय प्राप्त करें, उनके स्वभाव को जानें, उसके पश्चात् सबसे पहले उस कर्म पर विजय प्राप्त करने का यत्न करें जो हमारी आत्मा के लिए सबसे हानिकारक हो।

अतः इस चौथे द्वार में आपके लिए प्रस्तुत है आठ कर्मों का संक्षिप्त परिचय-

### I आठ कर्मों की परिभाषा व स्वभाव-

#### 1. ज्ञानावरणीय कर्म\*- ज्ञान+आवरणीय। आवरण=ढकना, छिपाना

जिस कर्म के उदय से आत्मा का ज्ञान गुण ढक (छिप) जाता है अर्थात् ज्ञान का प्रकाश कम होता है उसे 'ज्ञानावरणीय' कर्म कहते हैं।

#### \* टिप्पण

1. ज्ञानावरणस्य पटौपम्य मुक्तम्। सम्प्रति पटस्यावारकत्वमभिधाय ज्ञानावरणे योजयति-  
जह निम्मलावि चक्खू, पडेण केणावि छाइया संती।  
मंद मंदतरागं, पिच्छइ सा निम्मला जइवि ॥११॥

**व्याख्या-** यथा निर्मलमपि चक्षुः पटेन 'केनापि' मसृणमसृणतरादिना छादितं सत् मंद 'मन्दतरकं' मन्दतरमेव मन्दतरकं पश्यति 'तन्निर्मलं यद्यपि' चक्षुर्हि स्वभाव-निर्मलमपि मसृण पटेनाच्छादितं मन्दं पश्यति मसृणतरेण तु मन्दतरमिति।

- सटीकाश्चत्वारः प्राचीनाः कर्मग्रंथाः कर्म ग्रन्थ भाग 1 की परमानन्द सूरिकृत वृत्ति पृ. सं.-9

2. एसिं जं आवरणं, पडु व्व चक्खुस्स तं तयावरणं।  
दंसणचउ पणनिद्दा, वित्तिसमं दंसणावरणं॥१॥

'एषां' मतिज्ञानादीनां पञ्चानां ज्ञानानां यद् 'आवरणम्' आच्छादकम् 'पट इव' सूत्रादि निष्पन्नशाटक इव 'चक्षुषः' लोचनस्य, तत् तेषां-मतिज्ञानादीनामावरणं तदावरणमुच्यते। इदमत्र हृदयम्-यथा घनघनतरघनतमेन पटेनावृतं सत् निर्मलमपि चक्षुर्मन्दमन्दतरमन्दतमदर्शनं भवति,

-श्रीमद् देवेन्द्रसूरि विरचित प्रथम कर्मग्रंथ स्वोपज्ञवृत्ति पृ. सं.-26

### चक्षु पर पट ( परदे ) के समान ज्ञानावरणीय कर्म

• जिस प्रकार निर्मल चक्षु वाले व्यक्ति में सामने रही हुई वस्तु स्पष्ट रूप से देखने की क्षमता होने पर भी परदे का आवरण आ जाने पर वस्तु स्पष्ट दिखाई नहीं देती है। चक्षु पर जैसा आवरण होता है उसी हिसाब से कम ज्यादा दिखाई देती है। परदे में छिद्र ज्यादा होने पर ज्यादा स्पष्ट दिखाई देती है एवं छिद्र कम होने पर वस्तु कम स्पष्ट दिखाई देती है।

उसी प्रकार अनन्त ज्ञान सम्पन्न जीव में सब कुछ जानने की क्षमता होने पर भी ज्ञानावरणीय कर्म के उदय के कारण जीव का ज्ञान गुण ढक जाता है। ज्ञानावरणीय कर्म का जैसा उदय होता है उसी हिसाब से जीव को ज्ञान कम या ज्यादा होता है। ज्ञानावरणीय कर्म का मंद उदय होने पर ज्ञान ज्यादा होता है एवं ज्ञानावरणीय कर्म का तीव्र उदय होने पर ज्ञान कम होता है। परन्तु कितना ही तीव्र ज्ञानावरणीय कर्म का उदय क्यों न हो, जीव में कुछ न कुछ ज्ञान तो अवश्य रहेगा ही क्योंकि ज्ञान जीव का गुण है अगर जीव में बिलकुल भी ज्ञान नहीं होगा तो जीव-अजीव में कुछ भी अंतर नहीं रहेगा। अतः जीव में ज्ञान का कुछ अंश तो अवश्य रहेगा ही।

### सूर्य पर बादलों के समान ज्ञानावरणीय कर्म है-

• जिस प्रकार दैदीप्यमान सूर्य पर बादल आ जाने पर सूर्य दिखाई नहीं देता है परन्तु उसका प्रकाश रहता है। बादल कम होने पर सूर्य का प्रकाश ज्यादा रहेगा, बादल अधिक होने पर सूर्य का प्रकाश कम रहेगा, परन्तु कितने ही घने बादल क्यों न आ जाये सूर्य का कुछ न कुछ प्रकाश तो अवश्य रहेगा।

उसी प्रकार केवल (सम्पूर्ण) ज्ञान सम्पन्न आत्मा पर ज्ञानावरणीय कर्म का आवरण आ जाने से जीव को केवलज्ञान तो प्रकट में नहीं रहता परन्तु मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि प्रकट में रहता है। ज्ञानावरणीय कर्म का जितना उदय होगा, उस हिसाब से मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि रहता है। कितना ही गाढ़ ज्ञानावरणीय कर्म का उदय क्यों न हो संसार के समस्त जीवों को थोड़ा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवश्य रहता है। परन्तु जो जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं उनका ज्ञान मिथ्यात्व के कारण अज्ञान कहलाता है।

## 2. दर्शनावरणीय कर्म- दर्शन+आवरणीय। आवरण=ढकना, छिपाना।

जिस कर्म के उदय से आत्मा का दर्शन गुण ढक (छिप) जाता है, उसे 'दर्शनावरणीय' कर्म कहते हैं।

### राजा के द्वारपाल के समान दर्शनावरणीय कर्म

• जिस प्रकार सभी जनों से मिलने का इच्छुक ऐश्वर्य सम्पन्न राजा अपने द्वारपाल को आदेश देता है कि कोई भी दर्शन करने, मिलने के लिए आये उन्हें आने दिया जाये परन्तु द्वारपाल को यदि यह इष्ट नहीं हो तो वह राजा का आदेश प्राप्त होने पर भी अनेक जनों को राजा से मिलने नहीं देता है। लेकिन द्वारपाल में इतनी शक्ति (क्षमता) भी नहीं होती कि वह सभी जनों को द्वार पर ही रोक दे। यथा-राजकुमार, महारानी, मंत्री आदि। द्वारपाल का जितना Power होता है उस हिसाब से वह लोगों को रोकता है।\*

उसी प्रकार केवल दर्शन रूप ऐश्वर्य से सम्पन्न राजा रूप जीव है एवं उसके द्वारपाल के समान दर्शनावरणीय कर्म है तथा दर्शनार्थियों के समान लोक में विद्यमान समस्त जीव-अजीव पदार्थ हैं। जैसे-द्वारपाल सभी जनों को राजा से मिलने नहीं देता वैसे ही दर्शनावरणीय कर्म जीव को पदार्थों के दर्शन से वंचित करता है। परन्तु द्वारपाल रूप दर्शनावरणीय कर्म में इतनी क्षमता नहीं होती कि वह राजा रूप जीव को पूर्ण रूप से पदार्थों के दर्शन से वंचित कर दे, क्योंकि जैसे ज्ञान जीव का गुण है अतः जीव में सदैव पाया जाता है, उसी प्रकार दर्शन भी जीव का गुण है अतः जीव में सदैव पाया जाता है।

\* टिप्पण- जह राया तह जीवो, पडिहारसमं तु दंसणावरणं।  
तेणिह विबन्धणं, न पिच्छे सो घडाईयं ॥२१॥

व्याख्या- यथा राजा तथा जीव 'प्रतीहारसमं तु' प्रतीहारतुल्यं तु दर्शनावरणं कर्म 'तेन' दर्शनावरणेन 'इहं लोके' विबन्धकेन (प्रतिकुलेन) न प्रेक्षते न पश्यति स घटा-५ दिक् लोककल्पम्। आदिशब्दाज्जीवादितत्वम्। इति सूत्रार्थः ॥२१॥

(पारमा.) यथा राजा तथा जीवः राजस्थानीयो जीव इत्यर्थः। प्रतीहार समं दर्शनावरणं कर्म तेन 'इह' संसारे 'विबन्धकेन' अननुकूलेन न प्रेक्षते 'सः' जीवो घटादिकम्। अयमाशयः- यथा राजा प्रतीहारेणाऽननुकूलेन दिहक्षितमपि लोकं न पश्यति, तथा राजस्थानीयो जीवः प्रतीहारस्थानीयेन दर्शनावरणेनाऽननुकूलेन, लोकस्थानीयं घटपटादि वस्तु न पश्यति इति गाथार्थः ॥२२॥

-सटीकाश्चत्वारः प्राचीनाः कर्मग्रंथाः कर्मग्रंथ भाग-1 की अज्ञात पूर्वाचार्यकृत तथा परमानन्द सूरि कृत वृत्ति पृ. सं. 16

**3. वेदनीय कर्म-** जिस कर्म के उदय से आत्मा को पाँच इन्द्रिय व मनोजन्य सुख/दुःख की प्राप्ति होती है, उसे 'वेदनीय' कर्म कहते हैं।

**मधुलिप्त तलवार की तीक्ष्ण धार को चाटने के समान वेदनीय कर्म है।<sup>□</sup>**

• जिस प्रकार मधु के मीठे-मधुर स्वाद से युक्त तलवार की तीक्ष्ण धार को चाटने के प्रारम्भिक क्षणों में तो सुख एवं तृप्ति का अनुभव होता है परन्तु दूसरे ही पल जब उसकी तीक्ष्ण धार से जीभ कट जाती है, खून बहने लगता है तो दुःख का पार नहीं रहता है।

उसी प्रकार पाँचों इन्द्रियों के अनुकूल एवं प्रतिकूल विषयों को प्राप्त कराने वाला वेदनीय कर्म है। मधु के स्वाद के समान अनुकूल विषयों को प्राप्त कराने वाला सातावेदनीय कर्म है एवं जीभ काटने के समान प्रतिकूल विषयों को प्राप्त कराने वाला असातावेदनीय कर्म है।

**शिक्षा-** वेदनीय कर्म का स्वभाव मधुलिप्त तलवार की तीक्ष्ण धार को चाटने के समान बताकर ग्रंथकार ने यह स्पष्ट किया है कि सातावेदनीय कर्म के उदय से प्राप्त इन्द्रिय विषय जन्य सुख वस्तुतः सच्चा सुख नहीं है क्योंकि सच्चा सुख कभी भी दुःख में परिवर्तित नहीं होता है। इन्द्रिय विषय जन्य सुख ही तो दुःख का मूल कारण है।

जैसे मधुलिप्त तलवार की धार को चाटने वाले व्यक्ति को परिणाम स्वरूप दुःख प्राप्त होता है वैसे ही इन्द्रिय विषय जन्य सुख की चाह रखने वाले व्यक्ति को परिणाम स्वरूप अशांति, अतृप्ति व नरक निगोदादि में असह्य शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं। जो विवेकशील पुरुष इन्द्रिय विषय जन्य सुख व दुःख प्राप्त होने पर भी दोनों अवसरों पर समभाव रखता है वह अपूर्व, अनंत आत्मिक सुख-आनंद की अनुभूति करता है।

□ **टिप्पण-** महुलित्तनिसियकरवालधार जीहाइ जारिसं लिहणं।

तारिसयं वेयणियं सुहदुहउप्पायगं मुणह।।

-सटीकाश्चत्वारः प्राचीनाः कर्मग्रंथाः, प्रथम कर्मग्रंथ, गाथा-28

दिणचिंतित्यत्थकरणी, थीणद्धी अद्धचक्किअद्धबला।

महुलित्तखग्गधारालिहणं व दुहा उ वेयणियं।।

- श्रीमद् देवेन्द्रसूरि विरचित प्रथम कर्मग्रंथ, गाथा-12



**4. मोहनीय कर्म-** मोहनीय=मोहित करने वाला। जिस कर्म के उदय से आत्मा मोहित हो अर्थात् सत्-असत्, अच्छे-बुरे, हित-अहित के ज्ञान से रहित हो, उसे 'मोहनीय' कर्म कहते हैं।

#### मदिरा ( शराब ) के समान मोहनीय कर्म

- |   |   |
|---|---|
| <ul style="list-style-type: none"> <li>• जिस प्रकार शराब के नशे में व्यक्ति को यह समझ नहीं होती कि क्या करना सही है? क्या करना गलत है? मैं जो कार्य कर रहा हूँ वह मेरे कुल, समाज व धर्म को बदनाम करने वाला तो नहीं है?</li> </ul> | <p>उसी प्रकार मोहनीय कर्म के उदय से जीव को यह समझ नहीं होती कि क्या करना मेरी आत्मा के लिए हितकर है, क्या करना मेरी आत्मा के लिए अहितकर है? मैं जो कार्य कर रहा हूँ वह मेरी आत्मा को चतुर्गति संसार में परिभ्रमण कराने वाला तो नहीं है?</p> |
| <ul style="list-style-type: none"> <li>• जिस प्रकार 'शराब' एक ऐसा दुर्गुण है जो अन्य अनेक दुर्गुणों को जन्म देता है।</li> </ul>   | <p>उसी प्रकार 'मोहनीय' कर्म ऐसा कर्म है जो सभी कर्मों के बंधन का कारण है।</p>   |
| <ul style="list-style-type: none"> <li>• जिस प्रकार शराब व्यक्ति के तन-मन-धन सबको खराब करके अत्यन्त दुःख देती है।</li> </ul>  | <p>उसी प्रकार मोहनीय कर्म इहलोक-परलोक भव-भव खराब करके चतुर्गति संसार में अत्यन्त दुःख देता है।</p>  |
| <ul style="list-style-type: none"> <li>• जिस प्रकार शराब के गहरे नशे में धुत कोई व्यक्ति अपने को कुछ अपशब्द कह देवे तो भी सुना-अनसुना कर देना चाहिए क्योंकि वह व्यक्ति अभी बेभान है उसको कुछ भी कहने से फायदा नहीं है।</li> </ul> | <p>उसी प्रकार मोहनीय कर्म ( तीव्र क्रोध आदि ) के नशे में यदि कोई व्यक्ति कुछ अपशब्द कहे तो उसकी सुनी-अनसुनी कर देना चाहिए क्योंकि शराबी की तरह क्रोधी आदि व्यक्ति को भी कुछ कहने से फायदा नहीं होता।</p>                                    |

- |   |  |
|---|--|
| <ul style="list-style-type: none"> <li>• जिस प्रकार शराब के नशे में किया गया निर्णय सही नहीं होता।</li> <li>• जिस प्रकार शराब की लत लगने के बाद यदि कोई शराब छोड़ना भी चाहे तो उतनी आसानी से नहीं छूटती है परन्तु यदि उसका मनोबल दृढ़ है तो वह अपने मन को वश में करके शराब छोड़ देता है एवं सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है।</li> </ul> | <p>उसी प्रकार मोहनीय कर्म (तीव्र क्रोध आदि) के नशे में किया गया निर्णय सही नहीं होता। अतः आवेश में आकर कभी कोई निर्णय नहीं करना चाहिए।</p> <p>उसी प्रकार अनादि काल से मोहनीय कर्म के संस्कार अपनी आत्मा पर जमे हुए हैं अतः वे इतनी आसानी से छूटने वाले नहीं हैं। परन्तु यदि अपना मनोबल दृढ़ है तो हम भी मोह को छोड़कर अनन्त आत्मिक शांति को प्राप्त कर सकते हैं।</p> |
|---|--|

**शिक्षा-** मोहनीय कर्म आठों कर्मों का राजा है। जिस प्रकार युद्ध में राजा पर विजय प्राप्त करने का अर्थ है पूरे देश पर विजय प्राप्त करना, उसी प्रकार मोहनीय कर्म पर विजय प्राप्त करने का अर्थ है आठों कर्मों पर विजय प्राप्त करना। जो भी आत्मा मोक्ष जाती है वह सबसे पहले अपने मोहनीय कर्म पर विजय प्राप्त करती है। उसके पश्चात् शेष सारे कर्म तो अत्यन्त आसानी से खत्म हो जाते हैं। अतः हमें भी अपने मोह कर्म पर विजय प्राप्त करने के लिए सतत् पुरुषार्थ करना चाहिए।

**5. आयु कर्म-** जिस कर्म के उदय से आत्मा अमुक समय तक किसी गति में रुकी रहे, उसे आयु कर्म कहते हैं।

### बेड़ी के समान आयुष्य कर्म है।

जिस प्रकार अपराधी को बेड़ी में बांधने के पश्चात् अपनी अवधि समाप्ति तक उसे बेड़ी में रहना पड़ता है, वह उससे छूटने का कितना ही प्रयास करे, परन्तु छूट नहीं सकता तथा मरना चाहे तो भी मर नहीं सकता, क्योंकि उसके पांव बेड़ी से बंधे हुए होते हैं।

उसी प्रकार आत्मा ने जितनी आयुष्य का बंध किया है वह समाप्त होने तक उसे उसी गति में रहना ही पड़ता है। नैरयिकादि दुःख से छुटकारा पाने के लिए मरना चाहते हैं परन्तु वे आयुष्य पूर्ण हुए बिना मर भी नहीं सकते।

### आयु



#### सोपक्रम आयु

स+उपक्रम=सहित+उपक्रम। समय आने से पूर्व आयु की निर्जरा करना अर्थात् भोग लेना। जो आयुष्य अध्यवसाय आदि 7 कारणों\* से समय से पूर्व उदय में लाकर भोग ली जाती है उसे सोपक्रम आयुष्य कहते हैं।

#### निरुपक्रम आयु

जो आयुष्य अध्यवसाय आदि 7 कारणों के होने पर भी समय से पूर्व उदय में लाकर नहीं भोगी जा सकती है उसे निरुपक्रम आयुष्य कहते हैं। नैरयिक, देव, असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यञ्च व मनुष्य की आयु निरुपक्रम होती है। नैरयिक की आयु निरुपक्रम होने से मरने की इच्छा होने पर भी आयुष्य पूर्ण किये बिना नहीं मर सकते।

**\* टिप्पण:** 'उपक्रमणमुपक्रम:- अप्राप्तकालस्यायुषो निर्जरण'

-श्रीमद् भगवती सूत्र शतक 20 उद्देशक-10, श्री अभयदेव सूरिकृत वृत्ति पृ. सं.-944

1. अध्यवसाय :- राग, स्नेह या भय।
2. निमित्त :- शस्त्र, दण्ड आदि।
3. आहार :- अधिक आहार या आहार का अभाव।
4. वेदना :- अक्षिशूल, शिरोवेदना आदि।
5. पराघात :- गड्ढे आदि में गिर पड़ना।
6. स्पर्श :- सांप आदि का अथवा ऐसी वस्तु का स्पर्श जिससे शरीर विनष्ट हो जाये।
7. आनप्राण :- श्वासोच्छ्वास की गति मंद या अवरुद्ध होना।

शेष मनुष्य व तिर्यञ्चों की आयु सोपक्रमी, निरुपक्रमी दोनों प्रकार की होती है। जीव अपने इस भव में ही अगले भव के आयुष्य का बंध करता है। जीव के जैसे परिणाम होते हैं उसी अनुसार नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य या देव इन चारों में से किसी भी एक आयुष्य का बंध करता है। आयुष्य कर्म जीवन में एक बार बंधता है एवं बंधने के पश्चात् उसका परिवर्तन भी नहीं हो सकता।

### **जीवन में आयुष्य बंध का समय**

नैरयिक, देव, असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले मनुष्य व तिर्यञ्च अपनी आयु के 6 माह शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं। शेष मनुष्य व तिर्यञ्चों में निरुपक्रम आयु वाले अपनी-अपनी आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं। सोपक्रम आयु वाले कभी अपनी आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर, कभी तीसरे भाग का तीसरा भाग यानी 9वां भाग शेष रहने पर और कभी अपनी आयु के नौवें भाग का तीसरा भाग यानी सत्ताइसवां भाग शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं, कभी अपनी आयु के 27वें भाग का तीसरा भाग यानी 81वां भाग शेष रहने पर, कभी 81वें भाग का तीसरा भाग यानी 243वां भाग शेष रहने पर, कभी 243वें भाग का तीसरा भाग यानी 729वां भाग शेष रहने पर यावत् अन्तर्मुहूर्त्त आयु शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं।

आयुष्य बंध का क्षण अत्यन्त सूक्ष्म होता है। देवों को यह मालूम होता है कि हमारा आयुष्य पूर्ण होने से 6 माह पूर्व हम अगले भव के आयुष्य का बंध करेंगे। इतना मालूम होने पर भी जिस समय आयुष्य का बंध होता है उस समय देवों को भी नहीं मालूम पड़ता है कि हमारा अगले भव का आयुष्य बंध हो रहा है। बंध होने के पश्चात् वह जान जाते हैं कि हमारा अगले भव का आयुष्य बंध हो गया है।

**शिक्षा-** प्रिय पाठकों! हमें तो यह भी नहीं मालूम कि हमारा आयुष्य कितना है, इस क्षण हम जीवित हैं अगले क्षण का कोई भरोसा नहीं है, अतः हमें हर समय अपने परिणाम (विचार) निर्मल रखने चाहिए। जिससे हमारी मोक्ष की यात्रा सहज व सुगम बन सकती है, क्योंकि 1 बार यदि नरक व तिर्यञ्च में चले गये तो फिर कब हम पुनः सही राह पर यानी मोक्ष की राह पर आ पायेंगे यह कहना कठिन है, अतः हम सतत् जागरुकता पूर्वक धर्मारोधना करते हुए अपने जीवन को व्यतीत करें।

**6. नाम कर्म-** जिस कर्म के उदय से जीव को शुभाशुभ गति, जाति, रूप आदि की प्राप्ति होती है, उसे नाम कर्म कहते हैं।

**चित्रकार ( Painter ) के समान नामकर्म**

जिस प्रकार चित्रकार भिन्न-भिन्न रूप रंग वाले चित्रों का निर्माण करता है। उसमें कुछ चित्र प्रशंसनीय होते हैं एवं कुछ चित्र खराब होते हैं।	उसी प्रकार नामकर्म जीव के भिन्न-भिन्न रूप, रंग, शरीर आदि का निर्माण करता है, उसमें से कुछ अच्छे रूप, रंग भी होते हैं एवं कुछ खराब रूप, रंग भी होते हैं।
--	---

**शिक्षा-** अपने शरीर का रूप, रंग आदि कुछ भी यदि श्रेष्ठ है तो उस पर हमें अभिमान नहीं करना चाहिए अथवा रूप, रंग आदि यदि खराब हो तो उसकी चिन्ता भी नहीं करनी चाहिए तथा दूसरे के अच्छे रंग-रूप को देखकर ईर्ष्या भी नहीं करनी चाहिए एवं खराब रूप-रंग को देखकर घृणा भी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि जैसा कर्म किया उसे वैसा फल प्राप्त हो रहा है।

**7. गोत्र कर्म-** जिस कर्म के उदय से जीव उच्च या नीच कुल में उत्पन्न हो या उच्च या नीच शब्दों से पुकारने योग्य हो, उसे गोत्र कर्म कहते हैं।

**कुम्भकार के समान गोत्रकर्म**

जिस प्रकार कुम्भकार छोटे-बड़े अनेक प्रकार के घड़े बनाता है, उसमें से कोई घड़ा पूजा योग्य एवं कोई घड़ा शराब आदि घृणित पदार्थ रखने योग्य होता है।	उसी प्रकार गोत्र कर्म के उदय से जीव उच्च या नीच शब्दों से पुकारने योग्य होता है।
---	--

**8. अन्तराय कर्म-** अन्तर=बीच में+आय=आनेवाला। अन्तराय=विघ्न, बाधा। जिस कर्म के उदय से जीव को दानादि में विघ्न उपस्थित हो, उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

**भण्डारी के समान अन्तराय कर्म**

जिस प्रकार राजा के उदार होने पर भी भण्डारी यदि कंजूस हो तो खजाना कम हो रहा है, खाली हो जायेगा, अमुक व्यक्ति को देने से कोई फायदा नहीं आदि बातों से राजा की दान देने की भावना कम करता है या दान देने से रोकता है।	उसी प्रकार अन्तराय कर्म के उदय से व्यक्ति की सामर्थ्य शक्ति होने पर भी दान देने की भावना या पुरुषार्थ करने की इच्छा कम होती है अथवा दान, लाभ, भोग, उपभोग या पुरुषार्थ में विघ्न उत्पन्न होता है।
--	--

## II आठ कर्मों के क्रम का प्रयोजन\*-

ज्ञान व दर्शन जीव का स्वभाव है। इनके अभाव में जीवत्व का अस्तित्व नहीं रहता। जीव का लक्षण चेतना है। वह चेतना भी “ज्ञान, दर्शन” रूप ही है। अतः ज्ञान व दर्शन का आवरण करने वाले कर्मों को प्रारम्भ में स्थान दिया है।

ज्ञान व दर्शन- इन दोनों में ज्ञान प्रधान है, क्योंकि ज्ञान से ही जीव शास्त्रादि में पारंगत होता है। सभी लब्धियाँ साकारोपयोग (ज्ञान) से युक्त जीव को ही प्राप्त होती है, अनाकारोपयोग युक्त जीव को नहीं। जीव जिस समय में सभी कर्मों से मुक्त होकर सिद्ध होता है उस समय में वह ज्ञानोपयोग वाला होता है, दर्शनोपयोग वाला नहीं। अतः ज्ञान व दर्शन में ज्ञान प्रधान होने से उसको आवरण करने वाले कर्म को प्रथम स्थान दिया है, अतः पहला कर्म **ज्ञानावरणीय कर्म** है।

जीव जब ज्ञानोपयोग से हटता है तब वह दर्शनोपयोग में अवश्य आता है। अतः ज्ञानावरणीय के बाद **दर्शनावरणीय कर्म** को लिया गया है।

ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीय कर्म अपना फल देते हुए सुख-दुःख रूप वेदनीय कर्म के उदय में निमित्त बनते हैं। जैसे- ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीय के तीव्र उदय से कोई मंद बुद्धि वाले होते हैं, जन्मान्ध होते हैं, उस कारण से वे दुःखी होते हैं तथा ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीय के क्षयोपशम (मंद उदय) से कोई बुद्धिमान होते हैं, चक्षु से स्पष्ट देखते हैं, इस कारण वे सुख का अनुभव करते हैं। इस प्रकार ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीय कर्म सुख-दुःख रूप वेदनीय कर्म में निमित्त भूत है। अतः ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीय के बाद **वेदनीय कर्म** को ग्रहण किया गया है।

वेदनीय कर्म के उदय से जीव इष्ट विषयों के संयोग से सुख तथा अनिष्ट विषयों के संयोग से दुःख का अनुभव करता है तथा सकषायी संसारी जीवों को इष्ट व अनिष्ट विषयों पर राग-द्वेष अवश्य होता है। यह राग-द्वेष मोहनीय कर्म रूप है। इस प्रकार वेदनीय कर्म मोहनीय कर्म का कारण है। अतः वेदनीय कर्म के बाद **मोहनीय कर्म** को ग्रहण किया गया है।

---

\* टिप्पण- नव्य कर्मग्रंथ, स्वोपज्ञ टीका (देवेन्द्र सूरि) गाथा-2, 3

मोहनीय कर्म के उदय के अनुरूप जीव नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव- इन चारों प्रकार के आयुष्यों का बंध करके संसार में परिभ्रमण करता है। अतः मोहनीय कर्म के बाद **आयुष्य कर्म** को स्थान प्रदान किया गया है।

नैरयिकायु आदि किसी भी आयु का जब उदय होता है, तब अवश्य ही नरकगति, पंचेन्द्रिय जाति रूप नामकर्म का उदय होता है। इसलिए आयु के पश्चात् **नामकर्म** का कथन किया है।

नामकर्म का जब उदय होता है, तब उच्च या नीच गोत्र में से किसी एक गोत्र का उदय अवश्य होता है। इस बात को बताने के लिए नामकर्म के बाद **गोत्रकर्म** को रखा गया है।

उच्च गोत्र वाले जीव के जीवन में दानादि में प्रायः कम ही अन्तराय आती है और नीच गोत्र वाले जीव के जीवन में अधिक अन्तराय आती है अतः गोत्रकर्म के बाद **अन्तराय कर्म** को स्थान दिया गया है।

अथवा

संसारी जीव जितनी भी क्रियाएँ करते हैं वे सभी अन्तराय कर्म के क्षय या क्षयोपशम के आधार से ही करते हैं। अतः अन्तराय कर्म को सबसे अंत में रखा गया है।

### III कर्म बंध के कारण

**ज्ञानावरणीय कर्म बंध के 6 कारण-**

- |                        |                       |
|------------------------|-----------------------|
| 1 ज्ञान प्रत्यनीकता से | 2 ज्ञान निहनवता से    |
| 3 ज्ञान अन्तराय से     | 4 ज्ञान प्रद्वेष से   |
| 5 ज्ञान आशातना से      | 6 ज्ञान विसंवादनता से |

1. **ज्ञान प्रत्यनीकता-** ज्ञान व ज्ञानी का विरोध करने से। प्रत्यनीकता=विरोध करना।

2. **ज्ञान निहनवता-** ज्ञान को छिपाना एवं ज्ञानदाता गुरु का नाम छिपाने से। निहनवता=छिपाना, अपलाप करना।

3. **ज्ञान अन्तराय-** ज्ञान में अन्तराय देने से। अन्तराय=विघ्न उत्पन्न करना।

4. **ज्ञान प्रद्वेष-** ज्ञान व ज्ञानी से द्वेष करने से। प्रद्वेष=अरूचि, ईर्ष्या।
5. **ज्ञान आशातना-** ज्ञान व ज्ञानी की आशातना करने से। आशातना=हीलना, अपमान, अबहुमान।
6. **ज्ञान विसंवादनता-** ज्ञान व ज्ञानी से विसंवाद करने से। विसंवाद=कुतर्क द्वारा ज्ञान व ज्ञानी के कथन को गलत सिद्ध करने का प्रयास करना।

**प्रश्न-** ज्ञान प्रत्यनीकता एवं ज्ञान विसंवादनता में क्या अन्तर है?

**उत्तर-** ज्ञान प्रत्यनीकता यानी ज्ञान और ज्ञानी का सिर्फ विरोध करना, वहाँ तर्क-वितर्क नहीं किये जाते। जबकि ज्ञान विसंवादनता यानी कुतर्क और कुसिद्धान्त का सहारा लेकर ज्ञान और ज्ञानी को गलत सिद्ध करने का प्रयास करना।

**दर्शनावरणीय कर्म बंध के 6 कारण-**

- |                         |                        |
|-------------------------|------------------------|
| 1. दर्शन प्रत्यनीकता से | 2. दर्शन निहनवता       |
| 3. दर्शन अन्तराय से     | 4. दर्शन प्रद्वेष से   |
| 5. दर्शन आशातना से      | 6. दर्शन विसंवादनता से |

1. **दर्शन प्रत्यनीकता-** दर्शन व दर्शनवान का विरोध करने से।
2. **दर्शन निहनवता-** दर्शन व दर्शनवान का नाम छिपाने से।
3. **दर्शन अन्तराय-** दर्शन में अन्तराय देने से।
4. **दर्शन प्रद्वेष-** दर्शन व दर्शनवान से द्वेष करने से।
5. **दर्शन आशातना-** दर्शन व दर्शनवान की आशातना करने से।
6. **दर्शन विसंवादनता-** दर्शन व दर्शनवान से विसंवाद करने से।

वस्तु के सामान्य धर्म\* को जानना दर्शन है तथा वस्तु के विशेष धर्म को जानना ज्ञान है। ज्ञान व दर्शन का परस्पर गहरा संबंध है। अतः जिन क्रियाओं से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होता है उन्हीं क्रियाओं से दर्शनावरणीय कर्म का बंध भी अवश्य होता है। अतः दर्शनावरणीय कर्म बंध के छहों कारणों का विस्तृत वर्णन ज्ञानावरणीय कर्म के समान ही समझना चाहिए।

---

\* टिप्पणः सामान्य धर्म को जानना अर्थात् सत्तामात्र-अस्तित्व का बोध होना है।



**वेदनीय कर्म बंध के 22 कारण-**

(A) साता वेदनीय कर्म बंध के 10 कारण

(B) असाता वेदनीय कर्म बंध के 12 कारण

(A) साता वेदनीय कर्म बंध के 10 कारण-

1. प्राण अनुकम्पा से
2. भूत अनुकम्पा से
3. जीव अनुकम्पा से
4. सत्व अनुकम्पा से
5. बहुत प्राण भूत जीव सत्वों को दुःख न पहुँचाने से
6. बहुत प्राण भूत जीव सत्वों को शोक नहीं कराने से
7. बहुत प्राण भूत जीव सत्वों को नहीं झुराने से
8. बहुत प्राण भूत जीव सत्वों को शोक पूर्वक नहीं रुलाने से
9. बहुत प्राण भूत जीव सत्वों को नहीं मारने पीटने से
10. बहुत प्राण भूत जीव सत्वों को परिताप नहीं देने से

1. **प्राण-** बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय

2. **भूत-** वनस्पति

3. **जीव-** पंचेन्द्रिय

4. **सत्व-** पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय

अथवा प्राण, भूत, जीव, सत्व पर्यायवाची है तथा चारों शब्दों का सामान्य अर्थ जीव है।

**अनुकम्पा-** करुणा, दया

5. **दुःख नहीं देने से-** दूसरों को शारीरिक या मानसिक किसी भी प्रकार का दुःख नहीं देने से।

6. **शोक नहीं कराने से-** दीन भाव नहीं लाना, उत्साह हीन नहीं करना, उदासीन नहीं करना, वियोग जन्य दुःख नहीं देना।

7. **नहीं झुराने से-** ऐसा शोक नहीं कराना जिससे चिन्ता के मारे व्यक्ति का शरीर सूख जाये, क्षीण हो जाये।
8. **शोक पूर्वक नहीं रुलाने से-** ऐसा शोक नहीं कराना जिससे व्यक्ति की आँखों से आंसू आ जाये या मुँह से लार गिरने लग जाये।
9. **नहीं मारने पीटने से-** लकड़ी आदि से मारना-पीटना।
10. **परिताप नहीं देने से-** शारीरिक रूप से परेशान नहीं करना, दुःख नहीं देना, सताना या तंग नहीं करना।

**(B) असाता वेदनीय कर्म बंध के 12 कारण-**

1. दूसरों को दुःख देने से
2. दूसरों को शोक कराने से
3. दूसरों को झुराने से
4. दूसरों का शोक पूर्वक रुलाने से
5. दूसरों को मारने पीटने से
6. दूसरों को परिताप देने से
7. बहुत प्राण भूत जीव सत्वों को दुःख पहुँचाने से
8. बहुत प्राण भूत जीव सत्वों को शोक कराने से
9. बहुत प्राण भूत जीव सत्वों को झुराने से
10. बहुत प्राण भूत जीव सत्वों को शोक पूर्वक रुलाने से
11. बहुत प्राण भूत जीव सत्वों को मारने-पीटने से
12. बहुत प्राण भूत जीव सत्वों को परिताप देने से।
1. **दुःख देने से-** दूसरों को शारीरिक या मानसिक किसी भी प्रकार का दुःख देने से।
2. **शोक कराने से-** दीन भाव लाना, उत्साह हीन करना, उदासीन करना, वियोग जन्य दुःख देना।
3. **झुराने से-** ऐसा शोक जिससे चिन्ता के मारे व्यक्ति का शरीर सूख जाये, क्षीण हो जाये।
4. **शोक पूर्वक रुलाने से-** ऐसा शोक कराना जिससे व्यक्ति की आँखों से आंसू आ जाय या मुँह से लार गिरने लगे।

5. **परिताप देने से-** शारीरिक रूप से परेशान करना, बहुत दुःख देना, सताना या तंग करना।

प्रारंभ के 1 से 6 कारण 1 जीव की अपेक्षा एवं अन्तिम 6 अर्थात् 7 से 12 तक के कारण बहुत जीवों की अपेक्षा है। विवेचन के दौरान एक जीव व बहुत जीवों का पृथक्-पृथक् वर्णन न करके समुच्चय रूप से वर्णन किया गया है।

### मोहनीय कर्म बंध के 6 कारण-

1. तीव्र क्रोध करने से
2. तीव्र मान करने से
3. तीव्र माया करने से
4. तीव्र लोभ करने से
5. तीव्र दर्शन मोहनीय से
6. तीव्र चारित्र मोहनीय से।

क्रोध=गुस्सा, आवेश।

मान=घमण्ड, अहंकार।

माया=कपट, सच्चाई को छिपाना, दिखावा। लोभ=आसक्ति, लालच, आकांक्षा।

**दर्शन मोहनीय-** यहाँ दर्शन मोहनीय में सिर्फ मिथ्यात्व मोहनीय को लिया गया है क्योंकि मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से ही मोहनीय (मिथ्यात्व मोहनीय) कर्म का बंध होता है।

**चारित्र मोहनीय-** यहाँ चारित्र मोहनीय से नौ नोकषाय लिये गये हैं।

उपर्युक्त 6 कारणों में 'तीव्र' यह विशेषण व्यवहार नय से (मोटे रूप से) लगाया गया है क्योंकि आगम व कर्मग्रंथों में स्पष्ट वर्णन है कि 10वें गुणस्थानवर्ती सूक्ष्म लोभ को छोड़कर शेष सभी प्रकार के क्रोध-मान-माया-लोभ के उदय से मोहनीय का बंध अवश्य होता है।

### आयु कर्म बंध के 16 कारण-

1. नैरयिक आयु बंध के 4 कारण
2. तिर्यञ्च आयु बंध के 4 कारण
3. मनुष्यायु बंध के 4 कारण
4. देवायु बंध के 4 कारण

नैरयिक आयु	तिर्यञ्च आयु	मनुष्यायु	देवायु
1. महा आरम्भ करने से	माया करने से	प्रकृति की भद्रता से	सराग संयम पालने से
2. महा परिग्रह करने से	गूढ़ माया करने से	प्रकृति की विनीतता से	देश संयम पालने से
3. मांसाहार करने से	असत्य बोलने से	दया भाव रखने से	बाल तपस्या करने से
4. पंचेन्द्रिय वध करने से	न्यूनाधिक नापने-तोलने से	मत्सर भाव रहित होने से	अकाम निर्जरा करने से

**महाआरम्भ-** आरम्भ=हिंसा। जिन कार्यों से बहुत अधिक त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा होती है।

**महा परिग्रह-** परिग्रह=मूर्च्छा, आसक्ति। महापरिग्रह=अत्यन्त गहरी मूर्च्छा, अत्यन्त गहरी आसक्ति।

**माया-** कपट, धोखा।

**गूढ़ माया-** कपट पूर्वक असत्य बोलना एवं कपट को छुपाने के लिए अधिक झूठ बोलना।

**भद्रता-** भला स्वभाव, जिससे दूसरों को दुःख नहीं होता।

**विनीतता-** विनय।

**दया-** अनुकम्पा।

**मत्सरभाव-** ईर्ष्या, जलन, दूसरों के गुणों से जलना।

**सराग संयम-** सराग=जो राग (कषाय) सहित है, (वीतराग भ. आयुष्य का बंध नहीं करते) संयम=साधु जीवन अर्थात् पंच महाव्रतों की शुद्ध आराधना करना। पंच महाव्रतों की शुद्ध आराधना करने वाले सराग संयमी जीव देवायु का ही बंध करते हैं।

**देश संयम-** व्रतधारी श्रावक। 1 व्रतधारी से लेकर 12 व्रतधारी तक के सभी श्रावक देवायु का ही बंध करते हैं।

**बाल तपस्या-** बाल=अज्ञानी। ज्ञान रहित तपस्या करने वाले जीव तपस्या आदि से पुण्य का उपार्जन करके देवायु का बंध कर सकते हैं। यथा:- कोई संन्यासी मासखमण की तपस्या करता है, फिर पारणों में कुश के अग्रभाग पर आये उतना आहार ग्रहण करता है और पुनः मासखमण की तपस्या करता है। इस प्रकार वह जिन्दगी भर करता है परन्तु उसे धर्म का सही बोध नहीं है। वह सिर्फ स्वर्ग में सुख या मान-प्रतिष्ठा आदि के लिए यह सब करता है तो उसकी यह तपस्या बाल तपस्या कहलाती है। इस प्रकार की तपस्या द्वारा व्यक्ति देवायु का बंध कर सकता है। परन्तु मोक्ष की दिशा में आगे नहीं बढ़ सकता।

**अकाम निर्जरा-** अकाम=बिना इच्छा के। बिना इच्छा के भी लम्बे समय तक कष्टों को सहन करने या पुण्य उपार्जन का कार्य करने से भी देवायु का बंध हो सकता है।

### नाम कर्म बंध के 8 कारण-

A शुभ नाम कर्म बंध के 4 कारण

B अशुभ नामकर्म बंध के 4 कारण

### A शुभ नाम कर्म बंध के 4 कारण-

1. काया की सरलता- सहज निष्कपट भाव से काय चेष्टा करना, दूसरों को ठगने के लिए चेष्टा नहीं करना।
2. वचन की सरलता- सहज निष्कपट भाव से वचनों का प्रयोग करना, दूसरों को ठगने के लिए वचनों का प्रयोग नहीं करना।
3. भावों की सरलता- सहज निष्कपट भाव से मन में विचार करना, दूसरों को ठगने के लिए मन में विचार नहीं करना।
4. विसंवाद योग रहितता- कथनी और करनी में एकरूपता होना।

### B अशुभ नाम कर्म बंध के 4 कारण-

1. काया की वक्रता से- वक्रता=टेढ़ापन। दूसरों को ठगने के लिए काय चेष्टा करना, अर्थात् शरीर से दिखावटी क्रिया करना, शरीर के द्वारा वास्तविकता को छिपाने का प्रयास करना।
2. वचन की वक्रता से- दूसरों को ठगने के भाव से वचन बोलना, अर्थात् मन में कुछ और रखते हुए दिखावटी रूप से अच्छे वचन बोलना।
3. भावों की वक्रता से- दूसरों को ठगने के लिए मन में विचार करना।
4. विसंवाद योग युक्तता से- कथनी और करनी में एकरूपता नहीं होना।

### गोत्र कर्म बंध के 16 कारण-

A उच्च गोत्र कर्म बंध के 8 कारण

B नीच गोत्र कर्म बंध के 8 कारण

### A उच्च गोत्र कर्म बंध के 8 कारण-

1. जाति का मद न करने से
2. कुल का मद न करने से
3. बल का मद न करने से
4. रूप का मद न करने से

5. तप का मद न करने से
6. श्रुत का मद न करने से
7. लाभ का मद न करने से
8. ऐश्वर्य का मद न करने से।

**B नीच गोत्र कर्म बंध के 8 कारण-**

1. जाति का मद करने से
2. कुल का मद करने से
3. बल का मद करने से
4. रूप का मद करने से
5. तप का मद करने से
6. श्रुत का मद करने से
7. लाभ का मद करने से
8. ऐश्वर्य का मद करने से।

**अन्तराय कर्म बंध के 5 कारण-**

1. दान में अन्तराय देने से
2. लाभ में अन्तराय देने से
3. भोग में अन्तराय देने से
4. उपभोग में अन्तराय देने से
5. वीर्य में अन्तराय देने से।

**अन्तराय-** अन्तराय=विघ्न, बाधा

**भोग-** भोग=एक बार भोगने योग्य वस्तु

**उपभोग-** उपभोग=बार-बार भोगने योग्य वस्तु

**वीर्य-** वीर्य=पुरुषार्थ, पराक्रम



**शिक्षा-** हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि हम कर्मों के अधीन हैं। कर्म विषयक उपर्युक्त वर्णन हमें सिखाता है कि हमारा पुरुषार्थ ही प्रधान है। हमारे पुरुषार्थ के अनुसार ही हमने कर्मों का बंधन किया है एवं हमारे सत्पुरुषार्थ से हम आने वाले कर्मों को रोककर पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करते हुए अनन्त, शाश्वत, अपरिमित आत्मसुख को प्राप्त कर सकते हैं अतः हमें वर्तमान के सत्पुरुषार्थ पर ध्यान देना चाहिए।

## 2. श्रावकजी के 21 गुण

जिनेश्वर भगवंत के प्रियधर्मी-दृढधर्मी उपासक में नीचे लिखे 21 गुण होते हैं :- (श्रीमद् भगवती सूत्र श. 2, उ. 5)

1. श्रावकजी नव तत्त्व और पच्चीस क्रिया के जानकार हों।
2. श्रावकजी धर्म आराधना में देव, मनुष्य, तिर्यञ्च-किसी की सहायता की इच्छा नहीं करें।
3. श्रावकजी धर्म पर दृढ़ रहें। देव, मनुष्य या तिर्यञ्च के उपसर्ग से डिगाना चाहे, तो डिगें नहीं।
4. श्रावकजी श्री जिनधर्म में शंका नहीं करें, परदर्शन की इच्छा नहीं करें और करनी के फल में सन्देह नहीं करें।
5. श्रावकजी सूत्र और अर्थ दोनों को प्राप्त करने वाले, ग्रहण करने वाले, पूछ कर निश्चित करने वाले और रहस्य ज्ञान प्राप्त करने वाले हों।
6. श्रावकजी की धर्मरूचि इतनी गहरी हो कि जिसका प्रभाव रक्त और मांस पर ही नहीं, हड्डियों और मज्जा तक में व्याप्त हो जाय।
7. श्रावकजी निर्ग्रथ-प्रवचन ही सार है, अर्थ है और परमर्थ है, शेष सभी बातें, सभी वस्तुएँ और सभी संयोग अनर्थ है- ऐसी दृढ़, श्रद्धा रखे और धर्म-बन्धुओं में चर्चा करे।
8. श्रावकजी कूट-कपट, ठगई, अन्याय, अनीति एवं अनाचार से दूर रहकर अपना जीवन एवं आजीविका न्याय, नीति, सदाचार और धर्म-साधना से निर्मल एवं स्वच्छ रखे।
9. श्रावकजी दान के लिए अपने घर के द्वार खुले रखे।
10. श्रावकजी प्रतिमास दोनों पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या, इस प्रकार छः पौषध करे।
11. श्रावकजी के सदाचार की प्रतिष्ठा इतनी व्याप्त हो कि यदि वे धन से भरे हुए भंडारों और महिलाओं के निवास- अंतःपुर (राजाओं के निवास) में भी चले जायें तो उन पर किसी प्रकार की शंका नहीं हो, उनका विश्वास हो।





## 4. ज्ञानवृद्धि के 11 कारण

1. उद्यम करे तो ज्ञान बढ़े।
2. निद्रा तजे तो ज्ञान बढ़े।
3. ऊनोदरी (भूख से कम खाना) तप करे तो ज्ञान बढ़े।
4. अल्प बोले तो ज्ञान बढ़े।
5. पंडित पुरुषों की संगति करे तो ज्ञान बढ़े।
6. विनय करे तो ज्ञान बढ़े।
7. माया-कपट रहित तप करे तो ज्ञान बढ़े।
8. संसार असार जाने तो ज्ञान बढ़े।
9. सीखे हुए ज्ञान को बारम्बार चितारे तो ज्ञान बढ़े।
10. ज्ञानवंत के पास ज्ञान सीखे तो ज्ञान बढ़े।
11. पाँचों इन्द्रियों के विषयों को त्यागे तो ज्ञान बढ़े।



## कथा विभाग

### 1. भगवान मल्लिनाथ

जन्म स्थान	:	मिथिला
पिता	:	कुंभ राजा
माता	:	प्रभावती रानी
जन्मतिथि	:	मार्गशीर्ष शुक्ल 11
दीक्षातिथि	:	मार्गशीर्ष शुक्ल 11
केवलज्ञान	:	मार्गशीर्ष शुक्ल 11
शिष्य सम्पदा	:	40 हजार श्रमण, 55 हजार श्रमणियाँ
चिह्न	:	कलश
निर्वाण तिथि	:	मार्गशीर्ष शुक्ल 12

जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है, आत्मा की अनन्तशक्तियों में विश्वास करना और उन्हें विकसित करने का प्रयत्न करते रहना। चाहे कोई स्त्री हो, या पुरुष, आर्य हो या अनार्य, उच्च वर्ण का हो, या निम्नवर्ण का, जो साधना करेगा, वह निश्चय ही सिद्धि पाएगा और आत्मा की अनन्त शक्तियों को प्राप्त करेगा। इस सिद्धान्त का साक्षात् उदाहरण है उन्नीसवें तीर्थंकर भगवती मल्ली! स्त्री रूप में जन्म लेकर भी वे तीर्थंकर बने और अगणित प्राणियों को धर्म का प्रतिबोध दिया।

प्रभु मल्ली-स्त्री क्यों हुए? इसका उत्तर जैन धर्म का अटल कर्म सिद्धान्त देता है। उनके विगत जीवन से ही तीर्थंकरत्व और स्त्रीत्व-इन दोनों प्रश्नों का उत्तर मिलता है।

#### अमृत में जहर ( तप में कपट )

अपर महाविदेह की वीतशोका नगरी में एक 'बल' नाम का धर्मात्मा राजा हुआ। आकृति से वह मानव था, किंतु गुणों में वह देवता ही था। बड़ा सरल, विनम्र, संयमी और दयालु बल राजा के एक पुत्र था -राजा ने उसका नाम 'महाबल' रखा।

महाबल के छः राजकुमार घनिष्ट मित्र थे। छहों मित्रों के नाम थे- अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रवण और अभिचन्द्र। बचपन से ही वे गुरुकुल

में साथ में खेले-कूदे, साथ रहते, साथ खाते-पीते।

महाबल राजा बना, उधर छहों मित्र भी क्रमशः अपने-अपने राज्य के कर्णधार बने, किंतु फिर भी मित्रता का सूत्र ज्यों-का-त्यों जुड़ा रहा। प्रौढ़ अवस्था आने पर महाबल को वैराग्य हुआ - संसार त्यागकर दीक्षा लेने का विचार किया। छहों मित्रों को उसने अपना विचार बताया, तो वे बोल पड़े- “जिस पथ पर एक चलेगा, उस पर सब चलेंगे, एक के लिए सब और सबके लिए एक, यही हमारी मित्रता का अटल सिद्धान्त है। संसार के आनन्द-उपभोग में हम साथ रहे हैं तो आत्म कल्याण करने में भी साथ ही रहेंगे।”

इस प्रकार सबने दृढ़ निश्चय किया और महाबल तथा छहों मित्र धर्मघोष नाम के मुनि के पास दीक्षित हो गए। दीक्षा लेने के बाद सातों मुनियों ने विचार किया- “हम अब तक साथ-साथ रहते आए हैं, प्रत्येक कार्य सातों मिलकर करते रहे हैं तो अब धर्म साधना, तपश्चरण आदि भी एक समान और एक साथ करना चाहिए।” सबने इस निश्चय के अनुसार तपस्या प्रारम्भ कर दी।

महाबल मुनि के मन में विचार उठा-“सभी मित्र यदि समान तप करेंगे तो फिर मेरी उसमें विशेषता क्या रहेगी? मुझे कुछ विशेष तप करना चाहिए, किंतु कैसे? सबने एक समान तप करने का निश्चय किया है यदि मैं अधिक तप का पचक्खाण करूँगा तो वे भी करेंगे....।” इस प्रकार मुनि महाबल के मन में कुछ ‘विशेषता’ की भावना जाग गई। मित्रता समानता की भूमि पर चलती है, विशेषता की भावना आई कि मित्रता में धोखा और कपट के गड्ढे पड़ जाते हैं।

सातों मुनियों ने उपवास किया, छः तो पारणा की भिक्षा लेने गए, महाबल मुनि चुपचाप बैठे रहे। मुनि आए, उन्हें पारणा करने के लिए निमन्त्रण किया तो बोले- “आज मैं पारणा नहीं करूँगा।” साथी मुनि चकित होकर बोले- “आप पहले हमें कहते, हम भी नहीं करते.... हमारा तो संकल्प है साथ-साथ तप करना।

मुनि महाबल उन्हें मीठी भाषा में समझाते- “नहीं, तुम पारणा करो, मेरे लिये मत रूको, भिक्षा ले आए हो तो इसका उपयोग करना ही पड़ेगा।”

साथी मुनि मन-मसोस कर रह जाते, आखिर बड़े के नाते उनका

आदेश भी शिरोधार्य करना पड़ता।

मुनि महाबल अपनी ज्येष्ठता और चतुरता के कारण इस प्रकार छिपाकर- कपट करके तपःसाधना की प्रतिस्पर्धा में मित्रों से आगे बढ़ते चले गए। किंतु कपट आखिर पाप है, चाहे वह तप के लिए किया जाय अथवा भोग के लिए। चाहे मुनि हो या गृहस्थ। कपट और वह भी मित्रों के साथ, कितना अनर्थकारी होता है, मुनि महाबल जानते थे, पर तप के द्वारा विशिष्टता प्राप्त करने के लोभ में उनकी भावना, उनका ज्ञान, गलत दिशा में मुड़ गया। अमृत से भरे कलश में जहर मिल गया।

मुनि महाबल के बेला करने पर साथी मुनि भी बेला कर लेते, तो महाबल मुनि उन्हें कैसे भी फुसलाकर पारणा करवा देते और स्वयं तेला कर लेते। इस प्रकार तपस्या में प्रतिस्पर्धा के साथ आगे बढ़ते। कठोर से कठोर और दीर्घकालीन तपस्या, प्रतिमा और अभिग्रह आदि करके इस जन्म में महाबल मुनि ने तीर्थकर गोत्र का उपार्जन भी किया तो तप में मायाचार के कारण स्त्री वेद का बन्ध भी। अन्तिम समय में अनशन आदि के द्वारा समाधि मरण प्राप्त कर सातों मुनि वैजयंत नामक अनुत्तर विमान-स्वर्ग में गए!

---

मिथिला नगरी में उन दिनों इक्ष्वाकुवंशी राजा कुंभ का राज्य था। महारानी प्रभावती रूप-शील और बुद्धि में 'राज्य-लक्ष्मी' की भाँति मानी जाती थीं। महाबल मुनि की आत्मा रानी प्रभावती के गर्भ में आई और उन्होंने एक अद्वितीय तेज सम्पन्न कन्या के रूप में जन्म लिया। रानी को 'पुष्पमाला' पर सोने का दोहद हुआ था। इस कारण कन्या का नाम रखा गया मल्लीकुमारी।

मल्लीकुमारी अद्भुत लावण्य, रूप, तेज और प्रतिभा से युक्त थी। चंपक लता की भाँति ज्यों-ज्यों अवस्था को प्राप्त होती, उसकी मनोहारी सुषमा और अधिक निखरती जाती। लोग उसे देखकर रति और उर्वशी का वर्णन भूल जाते।

मल्लीकुमारी के अद्वितीय रूप-लावण्य की चर्चा भरत खण्ड के कोने-कोने में होने लगी थी। बड़े-बड़े राजाओं के अन्तःपुर इस चर्चा से गरम थे कि इस समय में यदि कोई परम सुन्दर स्त्री है तो वह है मल्लीकुमारी।

एक आश्चर्यजनक घटना घटी कि एक साथ छः पराक्रमी राजाओं के दूत मल्लीकुमारी की याचना करने मिथिला के दरबार में पहुँच गए।

सर्वप्रथम साकेतपुर के राजा प्रतिबुद्धि का दूत कुंभराजा के दरबार में पहुँचा और अभिवादन के साथ अपने राजा की बल, कीर्ति, वैभव आदि का बखान करते हुए निवेदन किया-

“महाराज! हमारे महाराज ने आपकी कन्यारत्न मल्लीकुमारी को अपने अन्तःपुर की शोभा बढ़ाने के लिए नम्र याचना की है। यह सम्बन्ध जुड़ जाने से हम दोनों राज्यों के बीच घनिष्ट मैत्री सम्बन्ध भी स्थापित हो जाएंगे।”

राजा कुंभ को यह याचना बहुत बुरी लगी। वे बोले- “तुम्हारा राजा अपने मुँह मियाँमिट्टु बन रहा है? कहाँ इन्द्र और चक्रवर्तियों को भी दुर्लभ मेरी कन्या और कहाँ तुम्हारा राजा! जाओ! अपने स्वामी को कहो- सद्बुद्धि से काम ले, अपने बल वैभव के अनुरूप ही किसी अन्य राजकुमारी की प्रार्थना करे, मल्लीकुमारी को प्राप्त करने का स्वप्न न देखे।”

दूत उदास-निराश हुआ लौट गया। इधर थोड़े ही समय बाद चंपापुरी के राजा चन्द्रच्छाय का दूत कुंभ राजा की सभा में पहुँचा और मल्लीकुमारी के लिए अपने राजा की प्रार्थना प्रस्तुत की। कुंभराजा ने फिर वही दो टूक जवाब दिया, दूत खिसिया कर लौट गया। इसी प्रकार श्रावस्ती के राजा रुक्मि, वाराणसी के शंख, हस्तिनापुर के अदीनशत्रु और काँपिल्यपुर के राजा जितशत्रु के दूत भी वहाँ पहुँचे। कुंभ राजा दूतों की बातें सुनते-सुनते परेशान हो गया, उसने सभी दूतों को एक ही जवाब दिया- “मल्लीकुमारी की इच्छा करने से पहले वे अपना सामर्थ्य देख लें और किसी अन्य राजकुमारी की प्रार्थना करें।”

राजाओं ने जब कुंभराजा का कड़ा और दो टूक उत्तर सुना तो उनका अहंकार फुंफकारने लगा। वे अपमान का बदला लेने और मल्लीकुमारी को प्राप्त करने की जिद्द ठान कर अलग-अलग दिशाओं से मिथिला पर चढ़ाई करने आ गये। मिथिला चारों ओर से घिर गयी। युद्ध के नगाड़े बजने लगे।

अचानक आक्रमण से कुंभराजा बहुत चिंतित हुआ। बाहर से किसी मित्र राजा का सहयोग भी नहीं मिल सकता था और एक साथ छः शत्रु राजाओं का सामना करने का बल भी उसके पास नहीं था। पिता की यह दुश्चिंता मल्लीकुमारी को भी असह्य हो गई। उसने कहा- “पिताजी! जहाँ

बल से काम न चलता हो, वहाँ क्या करना चाहिए?”

“बेटी! वहाँ छल से काम निकाला जाता है, पर वह भी मुझे नहीं सूझ रहा है। परन्तु कोई बात नहीं! मैं आखिरी दम तक लड़ूँगा और तुम्हारी रक्षा करूँगा।”

मल्लीकुमारी ने कहा- “पिताजी! इस छोटी-सी बात के लिए हजारों वीरों का रक्त बहाना, कोई समझदारी नहीं है। आप मेरी बात मानिए, और छहों राजाओं को मेरे सम्बन्ध के लिए निमन्त्रित कर दीजिए।”

कुंभराजा अवाक्-सा सुनता रहा- “बेटी! यह क्या कह रही हो? समस्या सुलझने की बजाय अधिक उलझ जाएगी! राजनीति छल से चलती है, किन्तु छल का परिणाम कभी-कभी बड़ा भयंकर आता है।”

मल्लीकुमारी ने धीरज बँधाते हुए कहा- “पिताजी! ऐसा नहीं होगा। मैं छल नहीं, वास्तविकता से जीतूँगी, मैंने सब योजना पहले से ही तैयार कर ली है। अशोकवाटिका में मैंने जो मोहनगृह बनवाया है, जिसमें छः सुन्दर गर्भगृह (कमरे) हैं, उनके बीच में (मध्य भाग में) सोने की जाली लगी है और उस जाली के भीतर जो स्वर्ण-रत्नमय मेरी दिव्य प्रतिमा (पुतली) बनवाई है वह किसलिए! वह इसी आपत्ति का निवारण करने के लिए है। मेरी सब योजना है, मुझे सब विधि मालूम है, आप अपने मंत्री को भेजिए और उन्हें उस मोहनगृह में निवास करने के लिए सूचना दीजिए।”

पुत्री की विलक्षण बुद्धि और दूरदर्शितापूर्ण चातुर्य को देखकर राजा स्तम्भित रह गया। मल्लीकुमारी के कथनानुसार राजा ने छहों राजाओं को मोहनगृह में ठहरा दिया, नगर की घेरे बन्दी खत्म हो गई।

छहों राजा अलग-अलग गर्भ-गृहों में आकर ठहर गए। जाली के उस पार मध्य भाग में मल्लीकुमारी की दिव्य प्रतिमा मणियों के प्रकाश में जगमगा रही थी। ऐसा लग रहा था, मल्लीकुमारी सामने खड़ी मुस्करा रही है, उसकी आँखों से स्नेह का अमृत बरस रहा है, होंठ अभी-अभी हिलने को हैं। एकटक देखते रहें, अभी कुछ बोलेगी।

एक गुप्त मार्ग से मल्लीकुमारी प्रतिमा के पीछे जाकर खड़ी हो गई। धीरे से उसने प्रतिमा के मस्तक पर कमल की आकृति का बना हुआ मुकुट (ढक्कन) खोला। ढक्कन खुलते ही भयंकर दुर्गंध उठने लगी। जैसे सांप आदि के मुर्दा कलेवर सड़ रहे हों। मल-मूत्र की भयंकर सड़ांध फैल रही

हों, उससे भी हजार गुनी अधिक तीव्र दुर्गंध उठने लगी। राजाओं का दम घुटने लगा। अब तक जो एकटक मल्लीकुमारी की प्रतिमा को निहार रहे थे, वे सहसा घबरा गये, कपड़ों से नाक-मुंह बन्द करके इधर-उधर भागने लगे, पर देखा, दरवाजे तो पहले से ही बन्द हैं, अब भीतर-ही-भीतर उनका दम घुटने लगा, भयंकर घबराहट और छटपटाहट मच गई। तभी मल्लीकुमारी ने सामने आकर पुकारा- “आप तो अत्यन्त प्रेम व स्नेह के साथ मुझे देख रहे थे न? अब क्या हो गया? क्या मैं अच्छी नहीं लग रही हूँ?”

मल्लीकुमारी का यह तीखा व्यंग्य राजाओं के हृदय में तीर-सा चुभ गया। परन्तु करते क्या? आज बुरी तरह फँस गए थे। वे बोले - “देवानुप्रिये! तुम्हारा रूप तो अद्वितीय है, जीवन भर देखते रहने से आँखें तृप्त नहीं होंगी! किंतु यह भयंकर दुर्गंध कहाँ से आ रही है! इसी से हमारा सिर फटा जा रहा है, यह दुर्गंध असह्य है।”

मल्लीकुमारी ने कहा- “जिस देह के रूप को देखते-देखते आपकी आँखें नहीं अघाती थी, भौरों की तरह जिस देह पुष्प पर आपका मन मुग्ध हो रहा था, वह दुर्गंध भी उसी देह की है। इस सुन्दर और मनोहर प्रतीत होने वाली त्वचा के भीतर यह गंदगी छिपी है, क्या आपको नहीं मालूम?”

राजाओं ने घबराकर कहा- “राजकुमारी! पहले हमें बाहर निकलने दो, फिर तुम यह सब रहस्य हमें समझाना।”

तभी गर्भगृहों के दरवाजे खुल गए, छहों राजा बाहर आ गए और दीन भावों से पराजित की भाँति मल्लीकुमारी की तरफ देखने लगे।

मल्लीकुमारी ने बताया- “जो स्वादिष्ट और मधुर सुगंधित भोजन मैं इस उदर में डालती थी, उसी भोजन का एक ग्रास प्रतिदिन इस पुतली में डाला जाता था। किन्तु उन स्वादिष्ट पुद्गलों की यह परिणति आज इतनी दुर्गंधमय बन गई है, कि उसकी गन्ध से भी आपका सिर फटा जा रहा है। क्या आप नहीं सोचते कि इस देह (उदर) की भी वही दशा होती, यदि इसमें से भी कहीं निर्गमन न होता। मानव की यह देह भी उतनी ही अशुचिमय, दुर्गन्धमय है। उस मल-मूत्र-अशुचि के ऊपर यह मेरी चमड़ी का आवरण है, यदि इसे हटा दिया जाय तो आप इस तन से भी उसी प्रकार घृणा करेंगे, जिस प्रकार इस दुर्गन्ध से कर रहे हैं।”

मल्लीकुमारी की मर्मभेदी वाणी सुनकर राजाओं का अन्तर विवेक

जगने लगा। भगवती ने आगे कहा- “हे देवानुप्रियों! आप किस नश्वर और अशुचिमय रूप पर मुग्ध हो रहे हैं? यह मल-मूत्र का भण्डार शरीर क्या कभी पवित्र और सुन्दर हो सकता है? यहाँ तो केवल सुन्दरता की भ्रांति है, इस भ्रांति को दूर हटाइये। अपने वास्तविक रूप को समझिए! अपनी ज्योतिर्मय अनन्त आनन्दमय, परम शुद्ध आत्मा का दर्शन कीजिए। आप भूल गए हैं, विगत जन्म (अब से पहले तीसरे जन्म) में हम सातों घनिष्ठ मित्र थे। हम साथ-साथ दीक्षित हुए, साथ-साथ तपस्या की और साथ ही अन्तिम अनशन कर देह त्याग कर स्वर्ग में गए। मैंने आप लोगों के साथ कपट किया था, इसलिए इस जन्म में स्त्री वेद मिला है पर कोई बात नहीं। हमें इस वेद भावना (अवेदी दशा) को ही मिटाकर वीतराग पद प्राप्त करना है, आत्मा के परम विशुद्ध स्वरूप में रमण करना है।”

भगवती मल्ली के उद्बोधन से राजाओं के अंतर चक्षु खुल गए। घने अन्धकार से निकलकर जैसे वे किसी प्रकाश पुँज के सामने खड़े हो गए। चिंतन करते-करते उन्हें भी जाति-स्मरण (पूर्व जन्म की स्मृति) ज्ञान हुआ, अपना पूर्व सम्बन्ध देखा। अब तो पश्चात्ताप करते हुए सभी राजा भगवती के चरणों में झुक गए, क्षमा माँगकर बोले- “अब हम क्या करें? कैसे इन दुःसंचित कर्मों से अपने को मुक्त करें?”

भगवती ने कहा- “यदि आपके मन में विरक्ति जगी है, तो जाइये अपने राज्यों में, अपने राज्य आदि की व्यवस्था कर संसार त्याग के लिए स्वयं को तैयार कीजिए। मैं भी शीघ्र ही दीक्षा लूँगी, आपको भी वही पथ अपनाना है और अपनी पुरानी मैत्री का उपसंहार इसी भव में करना है।

राजा कुंभ, अमात्य, सेनापति आदि सभी तब तक अशोक वाटिका में पहुँच गए थे। भगवती का उद्बोधन जिसने भी सुना, उसी का हृदय वैराग्य से आप्लावित हो गया। सभी राजा अपनी राजधानियों में गये। भगवती मल्ली ने पिताजी को दीक्षा का संकल्प बताया, वर्षीदान दिया और अन्त में तीन सौ स्त्रियों तथा तीन सौ पुरुषों के साथ संयम पथ स्वीकार किया।

भगवती मल्ली ने जिस दिन दीक्षा ग्रहण की, उसी दिन उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। प्रथम देशना में असंख्य देव-असुर-मानव उपस्थित हुए। वे छहों राजा भी प्रभु की देशना सुनने आये और पूर्व-संकल्प के अनुसार मुनि धर्म स्वीकार कर कठोर तपःसाधना कर ज्ञान-दर्शन प्राप्त करके





अंजना अपनी सहेलियों के साथ बैठी हुई थी। उस समय मिश्रिका नामक सहेली कह रही थी- “विद्युत्प्रभ के सामने पवनंजय कुछ नहीं है। वह कैसा गुणवान और धार्मिक संस्कारों वाला है?” तब दूसरी सहेली बसंतमाला ने उत्तर दिया- वह दीक्षा धारण कर अल्पायु में ही मोक्ष प्राप्त कर लेगा अर्थात् आयु पूर्ण कर लेगा, अतः उससे विवाह करने पर तो अधिकांश जीवन वैधव्य में रहना पड़ेगा।”

इस पर मिश्रिका बोली-“नमक की कई गुनी मात्रा भी एक मिश्री की डली के बराबर मिठास नहीं दे सकती। विद्युत्प्रभजी यदि दीक्षा ले लें और उनके बिना भी रहना पड़े तो जीवन धर्मध्यान में ही बीतेगा।

अंजना ने यह सब सुनकर लज्जावश पवनंजय का पक्ष नहीं लिया। पवनंजय ने सोचा- “इसका मेरे से अधिक स्नेह दूसरे पुरुष पर है, तभी यह चुपचाप बैठी रही।” इसलिए वे बहुत क्रुद्ध हुए और शादी होने पर भी अंजना से बात तक नहीं करने का निश्चय कर लिया।

क्रोध-ही-क्रोध में वे अंजना को चरित्रहीन समझने लगे। विवाह हुए बहुत वर्ष बीत गए, किन्तु पवनंजय अंजना के महल में नहीं गये।

पवित्र हृदय ऐसे झूठे आरोप को कैसे सह सकता था? किन्तु आखिर अंजना सती स्त्री थी। उसे माता-पिता से अच्छे संस्कार मिले थे। उन सुसंस्कारों ने उसे खूब धीरज बँधाया, उसने तनिक भी हिम्मत नहीं हारी। मन-ही-मन पति का भला ही चाहती। नमस्कार मंत्र का स्मरण आदि धर्मध्यान करती हुई वह समय व्यतीत करती थी। इस तरह बारह वर्ष बीत गए।

पवनंजय अपना अधिक समय राज्य के काम-काज में अथवा युद्ध में व्यतीत करते थे। युद्ध के मैदान में लड़ना उन्हें खेल मालूम होता था। एक बार उन्हें किसी दुश्मन पर चढ़ाई करनी पड़ी। सेना हवा की तरह आगे बढ़ती जा रही थी। रात होने पर सेना ने पड़ाव डाल दिया। पवनंजय एक पेड़ के नीचे सोये, पर उन्हें नींद नहीं आ रही थी। पवनंजय जिस पेड़ के नीचे सोये थे, उस पर एक घोंसला था। चकवा-चकवी आनन्द कर रहे थे। थोड़ी देर बाद चकवा उड़ने लगा। चकवी ने अपने पंखों से उसे रोकने की बहुत कोशिश की लेकिन चकवा नहीं माना, वह निर्दय होकर उड़ गया। चकवी को बहुत दुःख हुआ और वह अपने पंख फड़फड़ाने लगी, करुण

स्वर करने लगी।

चकवी की यह हालत देखकर पवनजय सोचने लगे- “इस चकवी को पति का वियोग इतना कचोट रहा है तो बेचारी अंजना की क्या हालत होगी, जिसे मैंने बारह वर्ष से त्याग रखा है। क्या वह मेरे लिए नहीं रोती होगी? हाय! क्या मैं एक पक्षी से भी गया-गुजरा हूँ।”

उसी समय पवन ने अपने मित्र को जगाया। रातों-रात अंजना के पास जाने का प्रबन्ध किया। एक ओर सुबह दुश्मन पर सेना ले जाकर हमला करना था और दूसरी ओर पत्नी का प्रेम जीतना था। पवन अपने मित्र के साथ विमान द्वारा अंजना के महल के पास पहुँचा। मित्र को नीचे बगीचे में बिठाकर महल में प्रवेश किया।

उस समय सब लोग गाढ़ी नींद में सो रहे थे किन्तु अंजना उस वक्त भी भगवान का ध्यान कर रही थी। दासी ने आकर उसे समाचार दिया- “राजकुमार पवनजय पधार रहे हैं।” यह सुनते ही अंजना घबरा गई। उसके मन में अनेक तरह के अनिष्ट विचार आने लगे। इतने में पवनकुमार पास में आ पहुँचे। उनके चेहरे पर स्नेह और प्रसन्नता का भाव देखकर अंजना आश्वस्त हुई। उसके सूखे चेहरे पर आनन्द उछलने लगा। आँखों से प्रेम के आँसू बह निकले। उसका गला रुंध गया। पवनजय के आने पर वह सत्कार करने के लिए एक भी शब्द न बोल सकी। चुपचाप वह पति के चरणों में गिर पड़ी। आँखों से गिरने वाले आँसुओं से उसने पति के पैर धोये।

पवनजय ने अंजना को खड़ा किया। कहने लगे- “अंजना! तू देवी है। मेरे जैसे अन्यायी पति के दोषों को भी तू भूल गई। वास्तव में तेरी पतिभक्ति धन्य है।”

रुंधे हुए कंठ से अंजना बोली- “नाथ! ऐसा मत कहिए। यह तो मेरे ही कर्मों का दोष है। इसमें आप क्या करते? आज मेरे जीवन में आनन्द का दिन है जो मुझे आप अपने चरणों में स्थान दे रहे हैं।”

दोनों एक दूसरे के दोषों को भूल गए। सुबह होते ही पवनजय को सेना के पास पहुँचना था। अंजना ने उन्हें कर्तव्यपालन से नहीं रोका। जाते समय यादगार के रूप में पवनजय ने अंजना को अपने हाथ की नामांकित अंगूठी दी। अंजना ने भरे हृदय से पवनजय को विदाई दी।

पवनजय उस रात अंजना से मिले हैं, यह किसी को मालूम नहीं था।

अंजना गर्भवती हो गई। कुछ महीने बीत गए। सासु को अंजना के गर्भवती होने का पता चला। उसके मन में सन्देह हुआ- पवन ने बारह वर्ष से अंजना को त्याग रखा है। फिर अंजना गर्भवती कैसे हो गई? अंजना ने पवनकुमार की दी हुई नामांकित अंगूठी दिखाई। सच्ची-सच्ची घटना कही किन्तु सासु को विश्वास नहीं आया। सारे नगर में बात फैल गई। निर्दोष अंजना के माथे पर कलंक का टीका लग गया। सास-ससुर ने उसे घर से निकाल दिया।

बेचारी अंजना अपने माँ-बाप के घर पहुँची किन्तु माँ-बाप ने उसे कलंकित समझकर घर में नहीं आने दिया। अंजना ने विचार किया- अभी मेरे भाग्य में दुःख भोगने शेष हैं।

अंजना राजा की पुत्री और राजकुमार की पत्नी थी लेकिन आज उसे आश्रय देने वाला कोई नहीं था। अन्याय सहन न कर सकने के कारण वह नदी में डूबकर मरने को तैयार हो गई। वह नदी में छलांग लगाने ही वाली थी कि उसे विचार आया-“मैं निर्दोष हूँ, निष्कलंक हूँ। मेरे पेट में पति की धरोहर है। मुझे गर्भ के जीव को नष्ट करने का क्या अधिकार है? मुझे इसकी रक्षा करनी ही चाहिए।”

ऐसा विचार कर उसने अपनी सहेली बसंतमाला के साथ जंगल की राह ली। वहीं एक सुन्दर पुत्र का जन्म हुआ। वह जंगल में बड़े ही प्रेम से अपने पुत्र का पालन-पोषण करने लगी। पुत्र के अंग वज्र के होने से नाम बजरंग रखा गया जो महाबली हनुमान के नाम से प्रसिद्ध हुए।

एक दिन हनुपुर का राजा प्रतिसूर्य (शूरसेन) उधर से होकर कहीं जा रहा था। उसने अपनी भानजी अंजना को दुःखमय स्थिति में देखा। वह उसे पुत्री समझकर अपने घर ले गया।

उधर पवनकुमार शत्रुओं को जीतकर वापिस लौटे। आते ही अंजना के महल में गए। बहुत दिनों बाद आज वह अंजना से मिलने जा रहे थे। अंजना कैसी होगी? क्या कर रही होगी? इस तरह से सोचते हुए वे अंजना के अन्तःपुर तक जा पहुँचे। दरवाजे के पास दासी बैठी हुई थी। उसने भरे गले से अंजना का सारा किस्सा सुनाया।

अंजना का वृत्तान्त सुनकर पवनकुमार को बहुत दुःख हुआ। संसार पर से उनका प्रेम उठ गया। दिल में खेद हो आया। वह उसी समय, उसी हालत में अंजना को खोजने चल पड़े। बहुत तलाश करने के बाद अंजना का पता

लगा। इस प्रकार संसार के स्वरूप को जानकर तथा धर्म की महिमा समझकर दोनों को वैराग्य उत्पन्न हो गया। दोनों ने दीक्षा ग्रहण की। अंजना और पवनकुमार को देखकर उनकी पुरानी दासी भी विरक्त हो गई। उसे भी संसार फीका लगा। उसने भी इन दोनों के साथ-साथ दीक्षा अंगीकर कर ली।

अंजना महासती और पवनकुमार निरतिचारपूर्वक संयम का पालन करते हुए अंत समय संलेखना संधारा करके देवलोक सिधार गये और वहां से उनका जीव महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

### 3. अनाथी मुनि

एक समय मगध देश का स्वामी राजा श्रेणिक सैर करने के लिए जंगल की ओर निकला। सैर करता हुआ राजा मंडितकुक्षि नामक उद्यान में आ पहुंचा। वहां एक वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाए हुए एक ध्यानस्थ मुनि को देखा। मुनि की प्रसन्न मुखमुद्रा, कान्तिमय दैदीप्यमान विशाल भाल और सुंदर रूप को देखकर राजा श्रेणिक विस्मित एवं आश्चर्यचकित हो गया। वह विचार करने लगा कि “अहा! कैसी इनकी कान्ति है? कैसा इनका अनुपम रूप है? अहा! इस योगीश्वर की कैसी अपूर्व सौम्यता, क्षमा, निर्लोभता तथा भोगों से निवृत्ति है!” उस योगीश्वर के दोनों चरणों को नमस्कार करके प्रदक्षिणा देकर न अति दूर और न अति पास, इस तरह खड़ा होकर, दोनों हाथ जोड़कर राजा श्रेणिक विनय पूर्वक इस प्रकार पूछने लगा- “हे आर्य! इस तरुणावस्था में भोग-विलास के समय आप श्रमण धर्म पालन करने के लिए क्यों उद्यत हुए? इस बात का उत्तर मैं आपके मुख से सुनना चाहता हूं।”

राजा के प्रश्न को सुनकर मुनि कहने लगे कि हे राजन्! मैं अनाथ हूँ, मेरा रक्षक कोई नहीं है और न मेरा कोई-कृपालु मित्र ही है इसीलिए मैंने मुनिव्रत धारण कर लिया है।

योगीश्वर का उत्तर सुनकर मगध देश के अधिपति राजा श्रेणिक को आश्चर्य हुआ। वह योगीश्वर से कहने लगा कि क्या आप जैसे प्रभावशाली तथा समृद्धशाली पुरुष को अभी तक कोई स्वामी नहीं मिल सका है? हे

योगीश्वर! यदि सचमुच आपका कोई सहायक नहीं है तो मैं सहायक होने को तैयार हूँ। मनुष्य जन्म अत्यंत दुर्लभ है इसलिए आप मित्र तथा स्वजनों से युक्त होकर सुखपूर्वक हमारे पास रहो और यथेच्छ भोगों को भोगो।

योगीश्वर कहने लगे कि 'हे मगधेश्वर श्रेणिक! तू स्वयं ही अनाथ है। जो स्वयं अनाथ है वह दूसरों का नाथ कैसे हो सकता है?' मुनि के वचन सुनकर राजा को अति विस्मय एवं आश्चर्य हुआ क्योंकि राजा के लिए ये वचन अभूतपूर्व थे। इसके पहले राजा ने ऐसे वचन कभी किसी से नहीं सुने थे। अतः उसे व्याकुलता और संशय दोनों ही हुए। राजा को यह विचार उत्पन्न हुआ कि वह योगी मेरी शक्ति, सामर्थ्य तथा सम्पत्ति को नहीं जानता है इसीलिए ऐसा कहता है। राजा अपना परिचय देता हुआ योगीश्वर से कहने लगा कि मैं अनेक हाथी, घोड़ों, करोड़ों आदमियों, शहरों एवं देशों (अंगदेश और मगध देश) का स्वामी हूँ। सुंदर अंतःपुर में मनुष्य संबंधी सर्वोत्तम भोग भोगता हूँ। मेरी सत्ता (आज्ञा) और ऐश्वर्य अनुपम है। इतनी विपुल सम्पत्ति होने पर भी मैं अनाथ कैसे हूँ? हे मुनीश्वर! कहीं आपका कथन असत्य तो नहीं है? मुनि कहने लगे कि राजन्! तू अनाथ और सनाथ के परमार्थ एवं असली रहस्य को न तो जान ही सका है और न समझ ही सका है। इसी से तुझे संदेह हो रहा है। मुझे अनाथता का ज्ञान कहाँ और किस प्रकार हुआ और मैंने दीक्षा क्यों ली, हे राजन्! इस सर्व वृत्तान्त को ध्यानपूर्वक सुनो-

प्राचीन नगरों में कोशांबी नाम की एक नगरी थी। वहाँ धन वैभव से परिपूर्ण मेरे पिता रहते थे। एक समय तरुण अवस्था में मुझे आंख की अतुल पीड़ा हुई और उस पीड़ा के कारण मेरे सारे शरीर में दाहज्वर हो गया। जैसे कुपित हुआ शत्रु मर्मस्थानों पर अति तीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा प्रहार कर घोर पीड़ा पहुंचाता है, वैसी ही तीव्र मेरी आंख की पीड़ा थी। वह दाहज्वर की दारुण पीड़ा इन्द्र के वज्र की तरह मेरी कमर, मस्तक तथा हृदय को पीड़ित करती थी। उस समय वैद्य शास्त्र में अति प्रवीण, जड़ी-बूटी तथा मंत्र-तंत्र आदि विद्या में पारंगत, शास्त्र विचक्षण तथा औषधि करने में अति दक्ष अनेक वैद्याचार्य मेरे इलाज के लिए आए। उन्होंने अनेक प्रकार से मेरी चिकित्सा की किन्तु मेरी पीड़ा को शांत करने में वे समर्थ न हुए। मेरे पिता मेरे लिए सब सम्पत्ति लगा देने को तैयार थे किन्तु उस दुःख से छुड़ाने में तो वे भी असमर्थ ही रहे। मेरी माता भी मेरी पीड़ा को देखकर दुःखित एवं अतिव्याकुल

हो जाती थी किन्तु दुःख दूर करने में वह भी असमर्थ थी। मेरे सगे छोटे और बड़े भाई तथा सगी बहिनें भी मुझे उस दुःख से न बचा सकीं। मुझ पर अत्यंत स्नेह रखने वाली पति परायणा मेरी पत्नी ने सब श्रृंगारों का त्याग कर दिया था। रात-दिन वह मेरी सेवा में लगी रहती, एक क्षण के लिए भी वह मेरे से दूर न होती थी किन्तु अपने आंसुओं से मेरे हृदय का सिंचन करने के सिवाय वह भी कुछ न कर सकी। मेरे स्वजन स्नेही और कुटुम्बीजन भी मुझे उस दुःख से न छुड़ा सके, यही मेरी अनाथता थी।

इस प्रकार चारों तरफ से असहायता और अनाथता का अनुभव होने से मैंने सोचा कि प्राणी को इस अनंत संसार में बार-बार दुःसह वेदना का अनुभव करना होता है, यह बहुत असह्य है इसलिए इस बार यदि मैं इस दारुण वेदना से छूट जाऊं तो क्षान्त (क्षमाशील), दान्त तथा निरारम्भी होकर तत्क्षण ही संयम धारण करूंगा। हे राजन्! रात्रि को ऐसा निश्चय करके मैं सो गया। ज्यों-ज्यों रात्रि व्यतीत होती गई त्यों-त्यों वह मेरी दारुण वेदना भी क्षीण होती गई। प्रातःकाल तो मैं बिल्कुल निरोग हो गया। अपने माता-पिता से आज्ञा लेकर क्षान्त-दान्त और निरारम्भी होकर संयमी (साधु) बन गया। संयम धारण करने के बाद मैं अपने आपका तथा समस्त त्रस और स्थावर जीवों का नाथ (रक्षक) हो गया।

हे राजन्! यह आत्मा ही आत्मा के लिए वैतरणी नदी तथा कूटशाल्मली वृक्ष के समान दुःखदायी है और यही कामधेनु तथा नन्दन वन के समान सुखदायी भी है। यह आत्मा ही सुख-दुःख का कर्ता और भोक्ता है। यदि सुमार्ग पर चले तो यह आत्मा ही अपना सब से बड़ा मित्र है और यदि कुमार्ग पर चले तो आत्मा ही अपना सबसे बड़ा शत्रु है।

इस प्रकार अनाथी मुनि ने राजा श्रेणिक को अपना पूर्व वृत्तांत सुनाकर यह बतलाया कि मुझे किस प्रकार वेदना सहन करनी पड़ी और किस प्रकार मुझे अनाथता का अनुभव हुआ। छः काय जीवों के रक्षक महाव्रतधारी मुनिराज ही सच्चे सनाथ (रक्षक) हैं किन्तु मुनिवृत्ति धारण करके जो उसका सम्यक प्रकार से पालन नहीं कर सकते, वे भी अनाथ ही हैं। यह दूसरे प्रकार की अनाथता है।

इस प्रकार कर्म शत्रुओं के घोर शत्रु, महा तपस्वी, विपुल यशस्वी, व्रती महा मुनीश्वर अनाथी ने अनाथता का सच्चा अर्थ राजा श्रेणिक को सुनाया।

इसे सुनकर राजा श्रेणिक अत्यंत प्रसन्न हुआ। दोनों हाथ जोड़कर राजा श्रेणिक उन महा मुनीश्वर से इस प्रकार अर्ज करने लगा- हे भगवन्! आपने मुझे सच्ची अनाथता का स्वरूप बड़ी ही सुंदरता के साथ समझा दिया। आपका मानव जन्म पाना धन्य है। आपकी यह दिव्य कान्ति, दिव्य प्रभाव, शांत मुखमुद्रा, उज्ज्वल सौम्यता धन्य है। जिनेश्वर भगवान् के सत्यमार्ग में चलने वाले आप वास्तव में सनाथ हैं, सर्वांधव हैं। संयमिन्! अनाथ जीवों के आप ही नाथ हैं। सब प्राणियों के आप ही रक्षक हैं। हे क्षमासागर महापुरुष! मैंने आपके ध्यान में विघ्न (भंग) डालकर और भोग भोगने के लिए आमंत्रित करके आपका जो अपराध किया है उसके लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।

इस प्रकार राजाओं में सिंह के समान श्रेणिक राजा ने श्रमण सिंह (साधुओं में सिंह के समान) अनाथी मुनि की परम भक्तिपूर्वक स्तुति की। मुनि का धर्मोपदेश सुनकर राजा श्रेणिक अपने अन्तःपुर (सब रानियां और दास दासियां) और सकल कुटुम्बीजनों सहित मिथ्यात्व का त्यागकर शुद्ध धर्मानुयायी बन गये।

अनाथी मुनि के इस अमृतोपम समागम से राजा श्रेणिक का रोम-रोम प्रफुल्लित हो गया। परम भक्तिपूर्वक मुनिश्वर को वंदना नमस्कार करके वे अपने स्थान को चले गये।

तीन गुप्तियों से गुप्त, तीन दण्डों (मन दण्ड, वचन दण्ड और काय दण्ड) से विरक्त, गुणों के भंडार अनाथी मुनि अनासक्त भाव से अप्रतिबंध विहारपूर्वक इस पृथ्वी पर विचरने लगे।

साधुता में ही सनाथता है। आदर्श त्याग में ही सनाथता है। आसक्ति में अनाथता है। भोगों में आसक्त होना अनाथता है और इच्छा और वासना की परतंत्रता में भी अनाथता है। अनाथता को छोड़कर सनाथ होना, अपने आप ही अपना मित्र बनना प्रत्येक मुमुक्षु का कर्तव्य है।





## काव्य विभाग

### श्री भक्तामर स्तोत्र-परिचय

भक्तामर स्तोत्र के रचयिता आचार्य श्री मानतुंगजी थे। आप बड़े ही प्रभावशाली विद्वान, आध्यात्मिक रस के रसिक, जिनशासन प्रभावक आचार्य हुए। आपने भक्ति रस से ओत-प्रोत हो भक्तामर स्तोत्र में प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ की स्तुति की।

इस स्तोत्र का छंद बसंततालिका है। संस्कृत में यह छंद मधुर एवं श्रेष्ठ माना जाता है। इस स्तोत्र की 48 गाथाएं अपने आप में रामबाण औषधि हैं।

**भक्तामर की रचना :-** एक समय अवंती नरेश राजा भोज ने दरबारियों के बहकावे में आकर चमत्कार देखने की इच्छा से श्री मानतुंगाचार्य जी को हथकड़ी बेड़ी डालकर कारावास में कैद करवा दिया और बाहर से मजबूत तालों से बंद कर पहरा लगा दिया। तीन दिन तक आचार्य श्री मानतुंगजी ध्यान में तल्लीन रहे और चौथे दिन भगवान आदिनाथ की स्तुति के रूप में भक्तामर की रचना प्रारंभ की। ज्यों ही छियालिसवां श्लोक बोल रहे थे त्यों ही हथकड़ी, बेड़ी और ताले आदि सभी बंधन टूटकर अपने आप अलग हो गए। आचार्य श्री के भक्तिरस का प्रभाव राजा भोज पर हुआ और वे जैन धर्म के अनुयायी बन गये।

प्रातःकाल में भक्तामर स्तोत्र का उच्चारण भावपूर्वक जो श्रद्धालु करते हैं उन्हें आध्यात्मिक वैभव अपने आप प्राप्त हो जाता है।

प्रभु भक्ति को ज्ञानियों ने महान निर्जरा का हेतु बताया है। स्तुति वह महान शक्ति है जिससे आत्मा सुलभ बोधि को प्राप्त करती है तथा उत्कृष्ट भावों से भक्ति करने वाला जीव तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन कर लेता है।

## 1. श्री भक्तामर-स्तोत्र

( रचयिता : आचार्य श्री मानतुंग )

भक्तामर - प्रणत - मौलि - मणि - प्रभाणा-

मुद्योतकं दलित - पाप - तमो - वितानम्।

सम्यक् - प्रणम्य जिन - पाद - युगं युगादा-

वालम्बनं भव - जले पततां जनानाम्॥१॥

यः संस्तुतः सकल - वाङ्मय तत्त्वबोधा -  
दुद्भूत - बुद्धि पटुभिः सुर - लोक - नाथैः।  
स्तोत्रैर् जगत्त्रितय - चित्त - हरै - रुदारैः।  
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥२॥

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चित - पाद - पीठ  
स्तोतुं समुद्यत - मतिर् - विगत - त्रपोऽहम्।  
बालं विहाय जल - संस्थित - मिन्दुबिम्ब-  
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्?॥३॥

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र! शशाङ्क - कान्तान्,  
कस्ते क्षमः सुर - गुरु - प्रतिमोऽपि बुद्ध्या?  
कल्पान्त - काल - पवनोद्धत - नक्रचक्रं,  
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्? ॥४॥

सोऽहं तथापि तव भक्ति - वशान् - मुनीश,  
कर्तुं स्तवं - विगत - शक्तिरपि - प्रवृत्तः।  
प्रीत्याऽऽत्म - वीर्य - मविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,  
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्॥५॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास - धाम,  
त्वद् - भक्तिरेव मुखरी - कुरुते बलान्माम्।  
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,  
तच्चाप्र-चारु-कलिका-निकरैक-हेतु॥६॥

त्वत्संस्तवेन भव - संतति - सन्निबद्धं,  
पापं क्षणात्क्षय - मुपैति शरीर - भाजाम्।

आक्रान्त - लोक - मलि - नील - मशेषमाशु,  
सूर्याशु - भिन्नमिव शार्वर - मन्धकारम्॥७॥

मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद -  
मारभ्यते तनु - धियापि तव प्रभावात्।  
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी - दलेषु,  
मुक्ता - फल - द्युतिमुपैति ननूद - बिन्दुः॥८॥

आस्तां तव स्तवन - मस्त - समस्त - दोषं,  
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति।  
दूरे - सहस्र - किरणः कुरुते प्रभैव,  
पद्माकरेषु जलजानि विकास - भाञ्जि॥९॥

नात्यद्भुतं भुवन - भूषण! भूतनाथ!  
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त - मभिष्टुवन्तः।  
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,  
भूत्याश्रितं य इह नात्म - समं करोति॥१०॥

दृष्ट्वा भवन्त - मनिमेष - विलोकनीयं,  
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः,  
पीत्वा पयः शशिकर - द्युति - दुग्धसिन्धोः,  
क्षारं जलं जल निधे - रसितुं क इच्छेत्॥११॥

यैः शान्त - राग - रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,  
निर्मापितस्त्रिभुवनैक - ललाम - भूत ।  
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,  
यत्ते समान - मपरं न हि रूपमस्ति॥१२॥

वक्त्रं क्व ते सुर - नरोरग - नेत्रहारि,  
निःशेष - निर्जित - जगत् - त्रितयोपमानं।

बिम्बं कलङ्क - मलिनं क्व निशाकरस्य,  
यद् वासरे भवति पाण्डु-पलाश -कल्पम्?१३॥

सम्पूर्ण - मण्डल - शशाङ्क - कला - कलाप-  
शुभ्रा - गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।  
ये संश्रितास् - त्रिजगदीश्वर - नाथ - मेकं,  
कस्तान् निवारयति संचरतो यथेष्टम्?१४॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभिर्  
नीतं मनागपि मनो न विकार - मार्गम्।  
कल्पान्त - काल - मरुता चलिता - चलेन,  
किं मन्दराद्रि - शिखरं चलितं कदाचित्? १५॥

निर्धूम - वर्ति - रप - वर्जित - तैलपुरः,  
कृत्स्नं जगत् - त्रय - मिदं प्रकटी - करोषि।  
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानाम्,  
दीपोऽपरस् - त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः॥१६॥

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,  
स्पष्टी-करोषि सहसा युगपज्जगन्ति।  
नाम्भो धरो दर-निरुद्ध-महाप्रभावः,  
सूर्यातिशायि महिमासि मुनीन्द्र! लोके ॥१७॥

नित्योदयं दलित - मोह - महान्धकारं,  
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।  
विभ्राजते तव मुखाब्ज-मनल्प - कान्ति,  
विद्योतयज्जगद-पूर्व-शशाङ्क-बिम्बम्॥१८॥

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा?  
युष्मन्मुखेन्दु - दलितेषु तमस्सु नाथ!  
निष्पन्न-शालिवन-शालिनि जीव-लोके,  
कार्यं कियज्-जलधरै-र्जल-भार-नघ्नैः?॥१९॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,  
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु।  
तेजः स्फुरन्-मणिषु याति यथा महत्त्वं,  
नैवं तु काच-शकले किरणा-कुलेऽपि॥२०॥

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा,  
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।  
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः  
कश्चिन् मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि?॥२१॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्  
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।  
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं  
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुर-दंशु-जालम्॥२२॥

त्वा-मामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-  
मादित्य - वर्ण - ममलं तमसः परस्तात्।  
त्वामेव सम्य - गुपलभ्य जयन्ति मृत्युं  
नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः॥२३॥

त्वा-मव्ययं विभु-मचिन्त्य-मसंख्य-माद्यं,  
ब्रह्माण-मीश्वर-मनन्त-मनङ्ग-केतुम्।  
योगीश्वरं विदित-योग-मनेक-मेकं,

ज्ञान-स्वरूप-ममलं प्रवदन्ति सन्तः॥२४॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित! बुद्धि-बोधात्-  
त्वं शंकरोऽसि भुवन-त्रय-शंकरत्वात्।  
धाताऽसि धीर! शिव-मार्ग-विधेर्विधानात्,  
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि॥२५॥

तुभ्यं नमस्त्रिभुव-नार्ति-हराय नाथ!  
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।  
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,  
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधि-शोषणाय॥२६॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैर-शेषैस्-  
त्वं संश्रितो निरवकाश-तया मुनीश?  
दोषै-रुपात-विविधाश्रय-जात-गर्वैः  
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥२७॥

उच्चैर-शोक-तरु-संश्रित-मुन्मयूख-  
माभाति रूप-ममलं भवतो नितान्तम्?  
स्पष्टोल्लसत्-किरण-मस्त-तमो-वितानम्  
बिम्बं रवे-रिव पयोधर-पार्श्व-वर्ति ॥२८॥

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे,  
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्  
बिम्बं वियद् - विलस-दंशु-लता-वितानं,  
तुङ्गो-दयाद्रि-शिरसीव सहस्र-रश्मेः॥२९॥

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं,  
विभ्राजते तव वपुः कल-धौत-कान्तम्

उद्यच्छशाङ्क - शुचि-निर्झर-वारि-धार-  
मुच्चैस्तटं सुर-गिरे-रिव शात- कौम्भम्॥३०।

छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-  
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानुकर-प्रतापम्।  
मुक्ताफल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं  
प्रख्यापयत्-त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्॥३१।

गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभागस्  
त्रैलोक्य-लोक-शुभ-संगम-भूतिदक्षः।  
सद्धर्म-राज-जय-घोषण-घोषकः सन्,  
खे दुन्दुभि-ध्वनति ते यशसः प्रवादी॥३२।

मन्दार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात-  
सन्तानकादि - कुसुमोत्कर - वृष्टि - रुद्धा ।  
गन्धोद - बिन्दु - शुभ - मन्द - मरुत्प्रपाता,  
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ।३३।

शुभत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते,  
लोक-त्रय-द्युति-मतां द्युति-माक्षिपन्ती ।  
प्रोद्यद्-दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या,  
दीप्त्या जयत्यपि निशा-मपि-सोम-सौम्याम् ।३४।

स्वर्गापवर्ग - गम - मार्ग - विमार्गणेष्टः  
सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटु स्त्रिलोक्याः।  
दिव्य-ध्वनि-र्भवति ते विशदार्थ-सर्व-  
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः ।३५।

उन्निद्र - हेम - नव - पङ्कज - पुञ्ज-कान्ती,  
पर्युल्लसन्-नख-मयूख-शिखाभिरामौ ।  
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः,  
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ।३६।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज् - जिनेन्द्र!  
धर्मोपदेशन - विधौ न तथा परस्य ।  
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,  
तादृक् कुतो गृह-गणस्य विकाशिनोऽपि? ।३७।

श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-  
मत्त-भ्रमद्-भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्।  
ऐरावताभ - मिभ - मुद्धत - मापतन्तं,  
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ।३८।

भिन्नेभ-कुम्भ-गल-दुज्ज्वल-शोणिताक्त-  
मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमिभागः ।  
बद्ध - क्रमः क्रम - गतं हरिणाधिपोऽपि,  
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते ।३९।

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं,  
दावानलं ज्वलित-मुज्ज्वल-मुत्स्फुलिङ्गम्।  
विश्वं जिघत्सु-मिव सम्मुख-मापतन्तं,  
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्य-शेषम् ।४०।

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं,  
क्रोधोद्धतं फणिन-मुत्फण-मापतन्तम् ।  
आक्रामति क्रम-युगेन निरस्त-शंकस्,



त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः १४१।

वल्गात्-तुरङ्ग-गज-गर्जित-भीम-नाद-  
माजौ बलं बलवता-मपि भूपतीनाम् ।  
उद्यद् - दिवाकर - मयूख - शिखापविद्धं,  
त्वत्कीर्तनात्-तम इवाशु भिदा-मुपैति १४२।

कुन्ताग्र - भिन्न - गज - शोणित - वारिवाह-  
वेगावतार - तरणातुर - योध - भीमे ।  
युद्धे जयं विजित - दुर्जय - जेय - पक्षास्-  
त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणो लभन्ते १४३।

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र-  
पाठीन-पीठ-भय-दोल्बण-वाडवाग्नौ ।  
रङ्ग-त्तरङ्ग-शिखर-स्थित-यान-पात्रास्-  
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति । १४४।

उद्भूत-भीषण-जलो-दर-भार-भुग्नाः,  
शोच्यां दशा-मुपगताश्च्युत-जीविताशाः।  
त्वत्पाद-पङ्कज रजोऽमृत-दिग्ध-देहा,  
मर्त्या भवन्ति मकर-धवज-तुल्य-रूपाः १४५।

आपाद - कण्ठ - मुरु - शृङ्खल - वेष्टिताङ्गा,  
गाढं-बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जंघाः।  
त्वन्नाम-मन्त्र-मनिशां-मनुजाः स्मरन्तः,  
सद्यः स्वयं विगतबन्ध-भया भवन्ति १४६।

मत्तद्विप्रेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि -

सङ्ग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम् ।  
तस्याशु-नाश-मुपयाति भयं भियेव,  
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥

स्तोत्र-स्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणै-र्निबद्धां,  
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्।  
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गता-मजस्रं,  
तं मानतुङ्ग-मवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥



## 2. रत्नाकर पच्चीसी

शुभ केलि के आनन्द के, धन के मनोहर धाम हो,  
नरनाथ से सुरनाथ से, पूजित चरण गत काम हो।  
सर्वज्ञ हो सर्वोच्च हो, सबसे सदा संसार में,  
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो आचार में॥१॥

संसार - दुःख के वैद्य हो, त्रैलोक्य के आधार हो,  
जय श्रीश रत्नाकर प्रभो! अनुपम कृपा-अवतार हो।  
वीतराग! हे विज्ञप्ति मेरी, मुग्ध की सुन लीजिए,  
तुम विज्ञ हो क्योंकि प्रभो! मुझको अभय वर दीजिए॥२॥

माता-पिता के सामने, बोली सुनाकर तोतली,  
करता नहीं क्या अज्ञ बालक, बाल्य-वश लीलावली?  
अपने हृदय के हाल को, वैसे यथोचित रीति से,  
मैं कह रहा हूँ आपके आगे, विनय और प्रीति से॥३॥

मैंने नहीं जग में कभी, कुछ दान दीनों को दिया,  
मैं सच्चरित भी हूँ नहीं, मैंने नहीं तप भी किया।  
शुभ भावना मेरी हुई, अब तक न इस संसार में,  
मैं घूमता हूँ व्यर्थ ही, भ्रम से भवोदधि धार में॥४॥

क्रोधाग्नि से मैं रात-दिन हा! जल रहा हूँ हे प्रभो!  
मैं लोभ नामक साँप से, काटा गया हूँ हे प्रभो!  
अभिमान के खल ग्राह से, अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूँ,  
किस भाँति हो, स्मृत आप, माया-जाल से मैं व्यस्त हूँ॥५॥

लोकेश! पर-हित भी किया, मैंने न दोनों लोक में,  
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे हो, खीझता हूँ शोक में।  
जग में हमारे से नरों का, जन्म ही बस व्यर्थ है,  
मानों जिनेश्वर! यह जगत की पूर्णता के अर्थ हैं॥६॥

प्रभु! आपने निज मुख सुधा का, दान यद्यपि दे दिया,  
यह ठीक है पर चित्त ने, उसका न कुछ भी फल लिया।

आनन्द-रस में डूबकर, सद्ब्रत वह होता नहीं,  
है वज्र सा मेरा हृदय, कारण पड़ा बस है यही॥७॥

रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है, प्रभु से उसे मैंने लिया,  
बहुकाल तक बहु बार जब, जग का भ्रमण मैंने किया,  
हा! खो गया वह भी विवश मैं नींद आलस में रहा,  
अब बोलिए उसके लिए, रोऊं प्रभो! किसके यहाँ?॥८॥

संसार ठगने के लिए, वैराग्य को धारण किया,  
जग को हंसाने के लिए, उपदेश धर्मों का दिया।  
झगड़ा मचाने के लिए, मम जीभ पर विद्या बसी,  
निर्लज्ज, हो कितनी उड़ाऊँ, हे प्रभो! अपनी हंसी॥९॥

पर दोष को कहकर सदा, मेरा बदन दूषित हुआ,  
लख कर पराई नारियों को, हा! नयन दूषित हुआ।  
मन भी मलिन है सोचकर, पर की बुराई हे प्रभो!  
किस भांति होगी लोक में, मेरी भलाई हे प्रभो!॥१०॥

मैंने बढ़ाई निज विवशता, हो अवस्था के वशी,  
भक्षक रतीश्वर से हुई, उत्पन्न जो दुःख राक्षसी,  
हा! आपके सम्मुख उसे, अति लाज से प्रकटित किया,  
सर्वज्ञ हो सब जानते, स्वयमेव संसृति की क्रिया॥११॥

अन्य मंत्रों से परम, परमेष्ठी मंत्र हटा दिया,  
सत्शास्त्र वाक्यों को, कुशास्त्रों से दबा मैंने दिया,  
दुःसंग से दुष्कर्म कर्त्ता, जान लेना तू मुझे,  
लोकेश! इस कारण मति भ्रम, मान लेना तू मुझे॥१२॥

हा! तज दिया मैंने प्रभो! प्रत्यक्ष पाकर आपको,  
अज्ञान-वश मैंने किया फिर, देखिए किस पाप को।  
वामाक्षियों के कुच कटाक्षों पर सदा मरता रहा,  
उनके विलासों का हृदय में, ध्यान भी करता रहा॥१३॥

लख कर युवतियों के मनोहर, नेत्र मुख जो रस मिला,

इस हेतु उनके प्रेम में, मम दौड़ कर मानस मिला ।  
सत्शास्त्र के सिद्धांत-निधि, सुन भी डरा है वह नहीं,  
संसार-तारक! जान पड़ता, कुछ मुझे कारण नहीं ॥१४॥

मुझ में न अपने अंग के, सौंदर्य का आभास है,  
मुझमें न गुण-गण है विमल, मुझमें न केली-विलास है ।  
प्रभुता न मुझमें स्वप्न की भी, है चमकती देखिए,  
तो भी भरा हूं गर्व से, मैं मूढ़ हो, किसके लिए ॥१५॥

हा! नित्य घटती आयु है, पर पाप-मति घटती नहीं,  
आई बुढ़ाई पर विषय से, कामना हटती नहीं ।  
मैं यत्न करता हूं दवा में, धर्म में करता नहीं,  
दुर्मोह-महिमा से ग्रसित हूँ, नाथ! बच सकता नहीं ॥१६॥

अघ पुण्य को जग आत्मा को, मैंने कभी माना नहीं,  
हा! आप आगे हैं खड़े, दीनानाथ से यद्यपि यहीं ।  
तो भी खलों के वाक्य को, मैंने सुना कानों वृथा,  
धिक्कार मुझको है गया, मम जन्म ही मानो वृथा ॥१७॥

सत्पात्र-पूजन देव-पूजन, कुछ नहीं मैंने किया,  
मुनिधर्म श्रावकधर्म का, भी नहीं सविधि पालन किया ।  
नर-जन्म पाकर भी वृथा ही, मैं उसे खोता रहा,  
मानो अकेला घोर वन में, व्यर्थ ही रोता रहा । ॥१८॥

प्रत्यक्ष सुखकर जैन मत में, प्रीति मेरी थी नहीं,  
जिननाथ! मेरी देखिए, है मूढ़ता भारी यही,  
हा! कामधेनुकल्पद्रुमादिक के यहां रहते हुए,  
हमने गंवाया जन्म को, धिक् लाख दुःख सहते हुए ॥१९॥

मैंने न रोका रोग-दुःख, संभोग सुख देखा किया,  
मन में न माना मृत्यु-भय, धन-लाभ ही लेखा किया ।

हा! मैं अधम युवती जनों के, ध्यान नित करता रहा,  
पर नरक-कारागार से, मन में न मैं डरता रहा ॥२०॥

सद् वृत्ति से मन में न मैंने, साधुता हा साधिता,  
उपकार करके कीर्ति भी, मैंने नहीं कुछ अर्जिता ।  
तीर्थ के उद्धार आदिक, कार्य कर पाए नहीं,  
नर-जन्म पारस तुल्य निज, मैंने गंवाया व्यर्थ ही ॥२१॥

शास्त्रोक्त विधि वैराग्य भी, करना मुझे आता नहीं,  
खल-वाक्य भी गत क्रोध हो, सहना मुझे आता नहीं ।  
अध्यात्म-विद्या है न मुझमें, है न कोई सत्कला,  
फिर देव! कैसे यह भवोदधि, पार होवेगा भला ॥२२॥

सत्कर्म पहले जन्म में, मैंने किया कोई नहीं,  
आशा नही जन्मान्य में, उसको करूँगा में कहीं ।  
इस भांति का यदि हूँ जिनेश्वर! क्यों न मुझको कष्ट हो?,  
संसार में फिर जन्म तीनों, क्यों न मेरे नष्ट हो ॥२३॥

हे पूज्य! अपने चरित्र को, बहु भांति गाऊँ क्या वृथा,  
कुछ भी नहीं तुझसे छिपी है, पापमय मेरी कथा।  
क्योंकि त्रिजग के रूप हो तुम, ईश हो सर्वज्ञ हो,  
पथ के प्रदर्शक हो तुम्हीं, मम चित्त के मर्मज्ञ हो ॥२४॥

दीनोद्धारक धीर, आपसा अन्य नहीं है,  
कृपा-पात्र भी नाथ! न मुझसा अवर कहीं है ।  
तो भी मांगू नहीं धान्य, धन कभी भूलकर,  
अर्हन्! केवल बोधिरत्न दे, होवे मंगल कर ॥  
श्री रत्नाकर गुण-गान यह, दुरित दुःख सबके हरे ।  
बस एक यही है प्रार्थना, मंगलमय जग को करे ॥२५॥



### 3. जय जय जय भगवान

जय जय जय भगवान

अजर-अमर अखिलेश निरंजन, जयति सिद्ध भगवान ॥ टे॥

अगम अगोचर तू अविनाशी, निराकार निर्भय सुख राशि ।  
निर्विकल्प निर्लेप निरामय, निष्कलंक निष्काम ॥ जय ॥१॥

कर्म न काया मोह न माया, भूख न तिरखा रंक न राया ।  
एक स्वरूप, अरूप अगुरु लघु, निर्मल ज्योति महान् ॥ जय ॥२॥

हे अनन्त, हे अन्तर्यामी, अष्ट गुणों के धारक स्वामी ।  
तुम बिन दूजा देव न पाया, त्रिभुवन में अभिराम ॥ जय ॥३॥

गुरु निर्ग्रन्थों ने समझाया, सच्चा प्रभु का रूप बताया ।  
अब तुम में ही मिल जाऊं मैं, ऐसा दो वरदान ॥ जय ॥४॥

‘सूर्य चन्द्र’ है शरण तिहारी, प्रभु करना मेरी रखवारी ।  
तुझ में मुझ में भेद न पाऊं, ऐसा हो संधान ॥ जय ॥५॥



## सामान्य ज्ञान विभाग

### 1. प्रत्याख्यान सूत्र

#### 1. नवकारसी सूत्र

उगए सूरे नमोक्कार-सहियं पच्चक्खामि चउव्विहंपि आहारं- असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। 1. अण्णत्थणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

#### 2. पौरुषी सूत्र

उगए सूरे पोरिसिं पच्चक्खामि, चउव्विहंपि आहारं- असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। 1. अण्णत्थणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. पच्छन्नकालेणं, 4. दिसामोहेणं, 5. साहुवयणेणं, 6. सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

#### 3. पूर्वार्ध ( पुरिमड्ड ) सूत्र

उगए सूरे पुरिमड्डं पच्चक्खामि, चउव्विहंपि आहारं- असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। 1. अण्णत्थणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. पच्छन्नकालेणं, 4. दिसामोहेणं, 5. साहुवयणेणं, 6. महत्तरागारेणं, 7. सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

#### 4. एकासन सूत्र

एक्कासणं पच्चक्खामि तिविहंपि चउव्विहंपि आहारं- असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। 1. अण्णत्थणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. सागारियागारेणं, 4. आउंटणा-पसारणेणं, 5. गुरु अब्भुट्ठाणेणं, 6. पारिट्ठावणियागारेणं, 7. महत्तरागारेणं, 8. सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

(श्रावक वर्ग पारिट्ठावणियागारेणं का उच्चारण नहीं करें।)

#### 5. एकस्थान ( एकलठाणा ) सूत्र

एक्कासणं एगट्ठाणं पच्चक्खामि, तिविहंपि चउव्विहंपि आहारं- असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। 1. अण्णत्थणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. सागारियागारेणं, 4. गुरु अब्भुट्ठाणेणं, 5. पारिट्ठावणियागारेणं, 6. महत्तरागारेणं, 7. सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

(श्रावक वर्ग पारिट्ठावणियागारेणं का उच्चारण नहीं करें।)

#### 6. आचाम्ल ( आयंबिल ) सूत्र

आयंबिलं पच्चक्खामि, 1. अण्णत्थणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. लेवालेवेणं,



4. उक्खित्तविवेगेणं, 5. गिहत्थसंसट्ठेणं, 6. पारिट्ठावणियागारेणं, 7. महत्तरागारेणं,  
8. सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

(श्रावक वर्ग पारिट्ठावणियागारेणं का उच्चारण नहीं करें।)

### 7. (अ) चौविहार उपवास

उग्गए सूरे (चउत्थभत्तं) अभत्तट्ठं पच्चक्खामि। चउव्विहंपि आहारं - असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। 1. अण्णत्थणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. पारिट्ठावणियागारेणं, 4. महत्तरागारेणं, 5. सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

(श्रावक वर्ग पारिट्ठावणियागारेणं का उच्चारण नहीं करें।)

### (ब) तिविहार उपवास

उग्गए सूरे (चउत्थभत्तं) अभत्तट्ठं पच्चक्खामि। तिविहंपि आहारं - असणं, खाइमं, साइमं। 1. अण्णत्थणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. पारिट्ठावणियागारेणं, 4. महत्तरागारेणं, 5. सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

### 8. दिवसचरिम सूत्र

दिवसचरिमं पच्चक्खामि, चउव्विहंपि आहारं- असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। 1. अण्णत्थणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. महत्तरागारेणं, 4. सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

### 9. अभिग्रह सूत्र

अभिग्रहं पच्चक्खामि, चउव्विहंपि आहारं - असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। 1. अण्णत्थणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. महत्तरागारेणं, 4. सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

### 10. निर्विकृतिक (नीवी) सूत्र

विगइयो पच्चक्खामि, 1. अण्णत्थणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. लेवालेवेणं  
4. गिहत्थसंसट्ठेणं, 5. उक्खित्तविवेगेणं, 6. पडुच्चमक्खिएणं, 7. पारिट्ठावणियागारेणं, 8. महत्तरागारेणं, 9. सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

(उपवास आदि में यदि पानी का आगार रखना हो तो 'चउव्विहं' के स्थान पर 'तिविहं' पाठ बोलना चाहिए और आगे 'पाणं' शब्द नहीं बोलना चाहिए।)

**नोट :** नीवी में आयम्बिल के आहार के अतिरिक्त साथ में नमक भी ले सकते हैं।

(आधार-दुर्ग चिंतन परिषद्)

## 2. प्रत्याख्यानों में रखे जाने वाले आगारों के अर्थ

1. अण्णत्थणाभोगेणं - प्रत्याख्यान की स्मृति न रहने से कुछ खा पी लेना।
2. सहसागारेणं - अचानक कोई वस्तु मुंह में गिर जाना जैसे वर्षा की बूंद आदि।
3. पच्छन्नकालेणं - पौरुषी आदि का समय ज्ञात न होने से अथवा बादलों, आंधी, कोहरा आदि के कारण सूर्य नहीं दिखाई दे। जिससे पौरुषी पूर्ण होने के भ्रम से पार लेना।
4. दिसामोहेणं - दिशा संबंधी भ्रम हो जाना अर्थात् पूर्व को पश्चिम समझ कर पौरुषी न आने पर सूर्य के ऊंचा चढ़ जाने की भ्रांति से आहारादि ग्रहण कर लेना।
5. साहुवयणेणं - साधु के द्वारा 'पौरुषी आ गई है' ऐसा कहने पर पौरुषी आदि पार लेना।
6. महत्तरागारेणं - वैय्यावृत्य आदि खास कारण से गुरु आदि की आज्ञा होने पर निश्चय किए हुए समय से पहले प्रत्याख्यान पार लेना।
7. सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं-अकस्मात् असाध्य रोगों के कारण निर्धारित समय के पहले ही औषधि लेना।
8. सागारियागारेणं - यह आगार मुख्यतः साधु-साध्वियों के लिए होता है। आहार ग्रहण के स्थान पर गृहस्थों के आने पर एकासन आदि में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना।
9. आउंटणा पसारणेणं - एकासन में भोजन करते समय हाथ पाँव सुन्न पड़ जाने आदि कारण से सिकोड़ना फैलाना पड़े।

10. गुरु अब्भुट्ठाणेणं - गुरुजनों के आने पर आहार आदि देने हेतु उठना पड़े।
11. पारिट्ठावणियागारेणं - यह आगार साधु-साध्वियों के लिए है। परठने की स्थिति होने पर एकासना आदि करने के बाद भी आहार ग्रहण करना पड़े।
12. लेवालेवेणं - घी आदि से लिप्त हो या बाद में उसे पोंछ लिया हो, फिर भी उसमें कुछ अंश रहता है, उस बर्तन आदि से दिया हुआ आहारादि ग्रहण करना पड़े।
13. उक्खित्तविवेणेणं - रोटी आदि पर रखे हुए सूखे गुड़ या शक्कर को अलग करके दिया जाए, उसे लेना पड़े।
14. गिहत्थसंसट्ठेणं - गृहस्थ के द्वारा घृतादि का लेप, घृतादि चुपड़ी रोटी, सूखी रोटी पर लेप, सिझाए हुए चावल या रोटी में पहले से नमक डाल दिया हो, छौंक में कुछ तेल घी डाल दिया हो यह अंश अत्यल्प हो, उसे लेना पड़े।
15. पडुच्चमक्खिणं - भोजन बनाते समय यदि घी तेल आदि का अंगुली से लेप लग गया है उसे लेना पड़े।

### 3. प्रत्याख्यान पारणा सूत्र ( पालने का पाठ )

(लिए गये पच्चक्खाण का नाम) सम्मं काएणं, न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न किट्ठियं, न सोहियं, न आराहियं, आणाए अणु पालियं न भवइ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(नोट : जो प्रत्याख्यान पालना हो 'पच्चक्खाण का नाम' के स्थान पर उस पाठ का नाम कह कर शेष पाठ कहना चाहिए।

अर्थ :- .....जो प्रत्याख्यान किया था उस प्रत्याख्यान का सम्यक् प्रकार से काया द्वारा स्पर्शनादि करना चाहिए फिर भी वह प्रत्याख्यान यदि मन-वचन-काया के द्वारा सम्यक् रूप से स्पर्श नहीं किया हो, पालन नहीं किया हो, पूर्ण नहीं किया हो, कीर्तन (स्मरण) नहीं किया हो, शुद्धि (शोधन)

नहीं किया हो, आराधना नहीं की हो तथा आज्ञा के अनुसार पालन नहीं हुआ (किया) हो, अर्थात् जो मेरे द्वारा उपरोक्त रूप से आराधना नहीं हुई हो तो उस दुष्कृत को मैं मिथ्या करता हूँ अर्थात् वह मेरा दुष्कृत कार्य असफल हो।

**व्याख्या-** प्रत्याख्यान पालन के छः अंग बतलाए गए हैं अतएव मूलपाठ के अनुसार कृत प्रत्याख्यान की आराधना करने से प्रत्याख्यान की पूर्णता होती है, अतः शास्त्रोक्त विधि अनुसार आराधना करनी चाहिए।

1. **फासियं (स्पृष्ट या स्पर्शित)**- उचित समय पर विधि पूर्वक गुरुदेव या स्वयं गृहीत जो प्रत्याख्यान है, उसे स्पर्शित कहते हैं।
2. **पालियं (पालित)**- गृहीत प्रत्याख्यान को बार-बार उपयोग में लाकर सावधानी के साथ उसकी सतत् रक्षा करने एवं उनके आराधना में सम्यक् उपयोग को पालित कहते हैं।
3. **तीरियं (तीरित)**- गृहीत प्रत्याख्यान का काल पूरा हो जाने पर भी कुछ समय ठहर कर प्रत्याख्यान पारने को तीरित कहते हैं।
4. **किट्टियं (कीर्तित)**- प्रत्याख्यान पारने से पहले लिए हुए प्रत्याख्यान का विचार कर उत्कीर्तन-पूर्वक कहना कि मैंने अमुक प्रत्याख्यान अमुक रूप से ग्रहण किया था और वह भलीभाँति पूरा हो गया है। ऐसे याद करके प्रत्याख्यान करने को कीर्तित कहते हैं।
5. **सोहियं (शोभित)**- कोई दूषण लग जाये तो सहसा उसकी शुद्धि करना, अथवा “सोहियं” का संस्कृत रूप “शोभित” भी होता है। इस दशा में अर्थ होगा- गुरुजनों, साथियों अथवा अतिथिजनों को भोजन देकर शेष बचा हुआ भोजन स्वयं करने को शोभित कहते हैं।
6. **आराहियं (आराधित)**- सब दोषों से सर्वथा दूर रहते हुए ऊपर कही हुई विधि के अनुसार सम्यक् प्रकार से प्रत्याख्यान निष्पन्न करने को आराधित कहते हैं।

साधारण मनुष्य सर्वथा भ्रान्ति रहित नहीं हो सकता। वह साधना करता हुआ भी कभी कभी साधना के पथ से इधर-उधर भटक जाता है। प्रस्तुत सूत्र के द्वारा स्वीकृत व्रत की शुद्धि की जाती है। भ्रान्ति जनित दोषों की आलोचना की जाती है और अन्त में मिच्छा मि दुक्कडं देकर प्रत्याख्यान में लगे अतिचारों का प्रतिक्रमण किया जाता है। आलोचना एवं प्रतिक्रमण करने से व्रत शुद्ध हो जाता है।

## 4. प्रत्याख्यान संबंधी कुछ ज्ञातव्य बिन्दु

नवकारसी, पौरुषी, दो पौरुषी- इन पञ्चक्खाणों में चारों आहार का त्याग होता है। इनमें तथा एकासन, आर्यंबिल, उपवास आदि में भी पहले वाले दिन सूर्यास्त के बाद से ही आहार पानी का त्याग कर देना श्रेष्ठ है अन्यथा अर्धरात्रि के बाद तो कुछ भी खाना-पीना नहीं होना चाहिए। रात्रि 12 बजे के बाद कुछ भी खा पी लेने पर नवकारसी, पौरुषी, एकासन, उपवास आदि के प्रत्याख्यान नहीं हो सकते हैं।

**एकासन** - दिन में एक बार पुट्टों को उठाये बिना भोजन करना। इसमें हाथ पैर का आकुंचन प्रसारण किया जा सकता है। किन्तु पुट्टे अपने स्थान पर टिके रहें। गुरु के आगमन पर खड़े हो सकते हैं। एकासन में अचित्त आहार पानी ही लिया जाता है। यदि चौविहार करना हो तो चउव्विहं कहकर 'असणं' के बाद 'पाणं' भी कहना चाहिए।

**एकलठाणा** - इसमें दिन में एक ही बार आहार पानी साथ में लेना होता है। इसमें पैर फैलाना, सिकोड़ना आदि कार्य नहीं किया जा सकता है। गुरु के आगमन पर खड़े हो सकते हैं।

**आर्यंबिल** - दिन में एक बार चावल, गेहूं, ज्वार, मक्की, बाजरे आदि की रोटी, दलिया आदि को नमक- मसाला रहित ग्रहण किया जा सकता है। दूध, दही आदि विगय, फल, लीलोती (हरी वनस्पति), सूखे मेवे, मुखवास व किसी भी प्रकार का नमक आदि इसमें ग्रहण नहीं किये जा सकते हैं। गुरु के आगमन पर खड़े नहीं हो सकते हैं।

**नीवी** - इसमें भी आर्यंबिल के समान ही आहार ग्रहण किया जाता है। अन्तर यह है कि नीवी में छाछ भी ग्रहण की जा सकती है एवं भोजन बनाते समय घी, तेल आदि का अंगुली से लेप लग गया हो तो उसे विवेकपूर्वक लिया जा सकता है।

**नोट-** - नीवी में आयम्बिल के आहार के अतिरिक्त साथ में नमक भी ले सकते हैं। (आधार- दुर्ग चिन्तन परिषद्)

## उपवास

- इसमें एक उपवास में चउत्थभत्तं, दो उपवास में छट्ठभत्तं, तीन उपवास में अट्ठभत्तं का पचक्खाण करना चाहिए। चतुर्थ भक्त का शब्दार्थ है- ऐसा तप जिसमें चौथा भक्त ग्रहण किया जा सकता है। भक्त का तात्पर्य है- भोजना आगमकारों ने एक अहोरात्रि में दो भक्त का निरूपण किया है-

1. दिवस भक्त, 2. रात्रि भक्त। जिस दिन उपवास करे उसके पहले की रात्रि का एक भक्त (अर्द्धरात्रि का समय परम्परा अनुसार है।) उपवास वाले दिन का एक भक्त तथा रात्रि का एक भक्त। इस प्रकार तीन भक्तों का त्याग होता है तथा अगले दिन सूर्योदय के पश्चात् चतुर्थ भक्त को ग्रहण किया जा सकता है। इसी प्रकार षष्ठम भक्त (बेला), अष्टम भक्त (तेला), दशम भक्त (चौला) आदि के विषय में भी यही समझना चाहिए।
2. तेले से ऊपर की तपस्या तिविहार हो तो गरम पानी का ही उपयोग करना चाहिए।
3. तिविहार उपवास, एकासना, आर्यंबिल, नीवी आदि में रात्रि में चारों आहार का प्रत्याख्यान होता है अर्थात् दिन में ही प्रासुक जल का आगार होता है।
4. एकासन, एकलठाणा, आर्यंबिल, नीवी आदि में आहार-पानी अचित्त ही ग्राह्य है। (सचित्त का निषेध समझना चाहिये)



## 5. पौषध स्वरूप, विधि एवं सावधानियां

1. सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र रूपी रत्नत्रय का पोषक।
2. आत्मा के स्वाभाविक गुणों का पोषक तथा
3. छः काया के जीवों का रक्षक होने से अहिंसा आदि व्रतों का पोषक होने वाला व्रत पौषध कहलाता है। पौषध आत्मचिंतन एवं आत्मविकास की सर्वोत्तम साधना है।

**वर्तमान में धारणा परम्परानुसार पौषध' तीन प्रकार का माना जाता है -**

(1) **ग्यारहवां प्रतिपूर्ण पौषध-** इसमें चतुर्विध आहार त्याग रूप उपवास तथा कम से कम 8 प्रहर का अर्थात् उपवास के दिन जितने बजे प्रत्याख्यान ग्रहण किया अगले दिन सूर्योदय के पश्चात् उतने बजे तक दो करण तीन योग से सावद्य योगों का त्याग किया जाता है।

(2) **ग्यारहवां पौषध-** इसमें चतुर्विध आहार त्याग रूप उपवास तथा कम से कम 5 प्रहर (चार प्रहर रात्रि तथा एक प्रहर दिन) का दो करण तीन योग से सावद्य योगों का त्याग किया जाता है।

(3) **दसवां पौषध-** इसमें त्रिविधाहार का त्याग रूप उपवास कम से कम 4 प्रहर से कुछ अधिक (चार प्रहर रात्रि के एवं कुछ समय दिन का) समय तक दो करण तीन योग से सावद्य योगों का त्याग किया जाता है।

इन तीन प्रकार के पौषधों के अतिरिक्त दया एवं दयाभाव की आराधना भी की जाती है। दया में लगभग सात प्रहर का दो करण तीन योग अथवा एक करण एक योग से संवर तथा ग्यारह सामायिक करना आवश्यक होता है। दया में उपवास करना अनिवार्य नहीं है। दयाभाव में नौ सामायिक तथा सूर्यास्त के पश्चात् प्रतिक्रमण पर्यन्त संवर की आराधना करनी होती है।

निर्दोष रूप से पौषध करने के लिए पौषध के पूर्व दिन निम्नलिखित 6 बोलों की शुद्धता रखनी चाहिए अर्थात् पौषध के पहले ही मैं इन कार्यों को कर लूं ऐसा विचार कर निम्नांकित 6 कार्य पौषध के पहले वाले दिन

टिप्पणी- आगमों में श्रावकों के लिए स्पष्टतः दो प्रकार के पौषध माने हैं- ग्यारहवां प्रतिपूर्ण पौषध तथा खाते पीते पौषध। ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषध का स्वरूप ऊपर बतलाया गया है खाते पीते पौषध को वर्तमान में 'दया' के नाम से पुकारा जाता है।

करना दोष रूप है। अतः ऐसा नहीं करना चाहिए।

1. क्षौर कर्म (हजामत, स्नान आदि) नहीं करना।
2. मैथुन सेवन नहीं करना।
3. सरस आहार नहीं करना।
4. वस्त्र नहीं धोना।
5. जेवर नहीं पहनना।
6. वस्त्र नहीं रंगना।

**पौषध ग्रहण करने के बाद निम्नांकित 12 बातों की शुद्धता रखनी चाहिए :**

1. पौषध में अत्रती को सत्कार नहीं देना, आसन नहीं देना, वैय्यावृत्य नहीं करना।
2. शरीर का श्रृंगार जैसे बाल संवारना, दाढ़ी मूँछ संवारना, धोती की पटली जमाना आदि नहीं करना।
3. स्वयं या दूसरे के शरीर का मैल नहीं उतारना।
4. दिन में नींद नहीं लेना तथा रात्रि में दो प्रहर से अधिक नींद नहीं लेना।
5. पूंजनी से पूंजे बिना खाज नहीं खुजलाना।
6. विकथाएं नहीं करना।
7. चुगली, निंदा, हंसी-मजाक आदि नहीं करना या गप्पे नहीं मारना।
8. व्यापार संबंधी, हिसाब संबंधी बातें नहीं करना या गप्पे नहीं मारना।
9. अपने शरीर को या स्त्री के शरीर को राग दृष्टि से नहीं देखना।
10. गौत्र, जाति, नाते आदि नहीं मिलाना, जैसे आप हमारे अमुक रिश्तेदार हैं आदि कहना।
11. खुले मुंह बोलने वाले तथा जिसके पास सचित्त वस्तु हो, उससे वार्तालाप नहीं करना।
12. रुदन नहीं करना, शोक संताप नहीं करना।

इन अट्टारह बोलों का पालन करने वाला साधक पौषध व्रत का शुद्ध आचरण करता है अन्यथा ये दोष लगते हैं। इन दोषों से अवश्य ही बचना चाहिए।



**पौषध व्रत के अतिचारः-** नीचे लिखे पांच अतिचारों को टालना चाहिए-

1. **अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित शय्या-संस्तारकः-** बिछौने, ओढ़ने तथा आसनादि की प्रतिलेखना नहीं करना अथवा अच्छी तरह से नहीं करना।
2. **अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित शय्या-संस्तारक :-** बिछौने आदि तथा भूमि आदि की प्रमार्जना नहीं करना अथवा अच्छी तरह न करना।
3. **अप्रतिलेखित, दुष्प्रतिलेखित उच्चार-प्रश्रवण भूमि :-** मल-मूत्रादि परठने के पूर्व उस स्थान की प्रतिलेखना नहीं करना अथवा अच्छी तरह से न करना।
4. **अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित उच्चार-प्रश्रवण भूमि :-** मल-मूत्रादि परठने के पूर्व उस स्थान को नहीं पूंजना अथवा अच्छी तरह से न पूंजना।
5. **पौषधोपवास का सम्यक् अपालन :-** पौषध का विधिपूर्वक पालन नहीं करना। (निद्रावस्था में, चलने में, बोलने इत्यादि में लगने वाले दोष भी इसके अन्तर्गत समाहित हो जाते हैं।)

उक्त अतिचारों से बचते हुए पौषध व्रत की आराधना करना चाहिए जिससे आत्मगुणों का पोषण और आत्मशक्ति का विकास होता है। जो श्रावक भावपूर्वक शुद्ध पौषध का पालन करता है वह 1. कषाय की गर्मी को शांत करता है 2. अशुभभावों को क्षय करके शुभभावों में वृद्धि करता है 3. अशुभ कर्मों को क्षय कर शुभ कर्मों का बन्ध करता है।

**पौषधव्रत ग्रहण करने की विधि-** सर्वप्रथम जहां पौषध व्रत करना हो वहां की भूमि का प्रतिलेखन करें, मल-मूत्र विसर्जन की भूमि का प्रतिलेखन करें, पहनने- ओढ़ने योग्य मुख वस्त्रिका, चद्दर, चोलपट्टा, आसन आदि की प्रतिलेखना करें। तत्पश्चात् तीन बार त्रिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना करें फिर नमस्कार मंत्र, इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी का पाठ बोलकर कायोत्सर्ग में एक लोगस्स का ध्यान करें फिर 'नमो अरिहंताणं' बोलकर ध्यान पालें। फिर कायोत्सर्ग विशुद्धि का पाठ कहकर एक लोगस्स प्रकट कहकर गुरु भगवंतों से अथवा गुरु भगवंतों के न विराजने पर बड़े श्रावकों से अथवा स्वयं पौषध के प्रत्याख्यान के पाठ से पौषध का प्रत्याख्यान ग्रहण करें (देखें आगे पृष्ठ 103 पर)। तदनंतर दो बार णमोत्थु णं का पाठ व अपने धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ कहें।

## पौषध पालने की विधि

नमस्कार महामंत्र, इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी का पाठ बोलकर दो लोगस्स का ध्यान करें। 'णमोअरिहंताणं' कहकर ध्यान पालें। फिर नमस्कार महामंत्र, कायोत्सर्ग विशुद्धि का पाठ एक लोगस्स प्रगट एवं दो बार णमोत्थु णं कहकर- अपने धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ कहें।

ग्यारहवां व्रत, पडिपुण्ण पौषध के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं- अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सेज्जासंथारए, अप्पमज्जिय, दुप्पमज्जिय सेज्जासंथारए अप्पडिलेहिय, दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमि अप्पमज्जिय, दुप्पमज्जिय उच्चार पासवणभूमि, पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया। जो मे देवसियो आइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पोसहोववासस्स सम्मं काएणं न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न किट्टियं, न सोहियं, न आराहियं, आणाए अणुपालियं न भवइ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पौषध के 18 दोषों में से कोई दोष का सेवन किया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पौषध में स्त्री कथा (पुरुष कथा), भक्त कथा, देश कथा, राज कथा, इन चार कथाओं में से कोई कथा की हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं। पौषध में आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा का सेवन किया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं। पौषध में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, जानते अजानते मन, वचन, काया से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पौषध विधि से लिया, विधि से पूर्ण किया, विधि में कोई अविधि हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

पाठ के उच्चारण में काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, न्यूनाधिक विपरीत पढ़ने में आया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं। इसके बाद 5 नवकारमंत्र का ध्यान करें।





## 6. आलोचना के सुभाषित

- (1) शुद्ध चेतन उज्ज्वल द्रव्य, रहयो कर्म मल छाया।  
तप संयम से धोवतां, ज्ञान ज्योति बढ जाय।।
- (2) ज्ञान थकी जाने सकल, दर्शन श्रद्धा रूपा।  
चारित्र से आवत रूके, तपस्या क्षपण स्वरूपा।।
- (3) कर्म रूप मल के शुधे, चेतन चाँदी रूपा।  
निर्मल ज्योति प्रकट भयां, केवलज्ञान अनूप।।
- (4) मूसी पावक सोहगी, फूँका तणो उपाय।  
राम चरण चारूँ मिल्यां, मैल कनक को जाय।।
- (5) कर्म रूप बादल मिटे, प्रगटे चेतन चंद।  
ज्ञान रूप गुण चांदनी, निर्मल ज्योति अमन्द।।
- (6) रागद्वेष दो बीज से, कर्म बंध की व्याधा।  
ज्ञानातम वैराग्य से, पावे मुक्ति समाधा।।
- (7) अवसर बीत्यो जात है, अपने वश कछु होत।  
पुण्य छतां पुण्य होत है, दीपक दीपक ज्योत।।
- (8) कल्पवृक्ष चिन्तामणि, इस भव में सुखकार।  
ज्ञान वृद्धि इनसे अधिक, भव दुःख भंजनहार।।
- (9) राई मात्र घट बध नहीं, देख्या केवल ज्ञान।  
यह निश्चय कर जानके, तजिये प्रथम ध्यान।।
- (10) दूजा कभी न चिंतिये, कर्मबंध बहु दोष।  
तीजा चौथा ध्याय के, करिये मन संतोष।।
- (11) गई वस्तु सोचे नहीं, आगम वांछा नांय।  
वर्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जग मांय।।
- (12) अहो समदृष्टि जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।  
अन्तर्गत न्यारो रहे, ज्यों धाय खिलावे बाल।।
- (13) सुख दुःख दोनूं बसत है, ज्ञानी के घट मांय।  
गिरी सर दीसे मुकुर में, भार भींजवो नांय।।

णमो सिद्धाणं  
श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड बीकानेर  
जैन संस्कार पाठ्यक्रम परीक्षा 2011

( प्रश्न-उत्तर पत्र भाग-5 ) पूर्णांक : 100

सूत्र विभाग-35

- प्रश्न 1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए। 5
- 1) ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप, ये चार आत्मा के.....हैं।
  - 2) दशवैकालिक सूत्र के रचयिता आचार्य.....थे।
  - 3) आचार्य श्री ने मुनि..... के लिये दशवैकालिक सूत्र की रचना की थी।
  - 4) दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन का नाम.....है।
  - 5) दशवैकालिक सूत्र के चतुर्थ अध्ययन का नाम.....है।
- प्रश्न 2. निम्न गाथाओं को पूर्ण कीजिए। 15
- 1) धम्मो .....मणो।
  - 2) पक्खंदे .....अगंधणे।
  - 3) उद्देसियं .....वीयणे।
  - 4) पढमं .....पावगं।
  - 5) तवोगुण .....तारिसगस्स।
- प्रश्न 3. निम्न गाथाओं का भावार्थ आवंटित स्थान पर लिखिए। 15
- 1) वयं च वितिं लब्भामो, ण य कोई उवहम्मइ।  
अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा॥  
उत्तर .....
  - 2) तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाइ सुभासियं।  
अंकुसेण जहा णागो, धम्मे संपडिवाइओ॥  
उत्तर .....
  - 3) धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा।  
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे॥  
उत्तर .....

- 4) सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।  
उभयंपि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे॥

उत्तर .....

- 5) पच्छा वि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमर भवणाइ।  
जेसिं पिओ तवो संजमो य, खंती य बंभचेरं चा॥

उत्तर .....

### तत्त्व विभाग-25

प्रश्न 1. निम्न रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये। 10

- 1) श्री भगवती सूत्र में कर्मों की प्रकृति बंध के .....कारण और श्री पन्नवणा सूत्र में कर्म भोग के कारण.....बताये।
- 2) वस्तु के विशेष धर्म को जानना.....और सामान्य धर्म को जानना.....कहलाता है।
- 3) मोहनीय कर्म की.....प्रकृतियां तथा अंतराय कर्म की ..... प्रकृतियां हैं।
- 4) आयुकर्म.....प्रकार से बंधता है और ..... प्रकार से भोगा जाता है।
- 5) नामकर्म की पिण्ड प्रकृतियाँ ..... हैं और उनके उत्तर भेद ..... हैं।

प्रश्न 2. निम्न प्रश्नों के उत्तर एक पंक्ति में लिखिए। 10

- 1) बंध के चार प्रकारों के नाम लिखिए।

उत्तर .....

- 2) मोहनीय कर्म को परिभाषित कीजिए।

उत्तर .....

- 3) आयुकर्म को परिभाषित कीजिए।

उत्तर .....

- 4) नरकायु बांधने के चार कारण लिखिए।

उत्तर .....

5) शुभ नामकर्म बंध के चार कारण लिखिए।

उत्तर .....

प्रश्न 3. सही जोड़ी बनाइये। बनाकर रिक्त स्थान पर लिखें। 5

- |                              |                     |       |
|------------------------------|---------------------|-------|
| 1) अल्प आरंभ                 | ज्ञान बढ़ने का कारण | ..... |
| 2) कुटुम्ब परिवार के मोह में | ज्ञान घटने का कारण  | ..... |
| 3) उद्यम करे                 | श्रावक का एक गुण    | ..... |
| 4) दर्शन मोहनीय              | दो माह              | ..... |
| 5) संज्वलन क्रोध             | 3 भेद               | ..... |

### कथा विभाग-10

प्रश्न 2. किसने किससे कहा? 10

1) “नहीं तुम पारणा करो, मेरे लिए मत रूको, भिक्षा ले आए हो, तो इसका उपयोग करना ही पड़ेगा।”

उत्तर .....

2) “राजनीति छल से चलती है किन्तु छल का परिणाम कभी-कभी बड़ा भयंकर आता है।”

उत्तर .....

3) “मेरे जैसे अन्यायी पति के दोषों को भी तू भूल गई। वास्तव में तेरी पति भक्ति धन्य है।”

उत्तर .....

4) “तू स्वयं ही अनाथ है, जो स्वयं अनाथ है, वह दूसरों का नाथ कैसे हो सकता है?”

उत्तर .....

5) “राजकुमार पवनंजय पधार रहे हैं।”

उत्तर .....



### काव्य विभाग-15

- प्रश्न 1. निम्न गाथाओं को पूर्ण करो। 15
- 1) अल्प श्रुतं .....  
..... निकरैक-हेतुः॥
  - 2) ज्ञानं यथा .....  
..... कुलेऽपि॥
  - 3) स्तोत्र .....  
..... लक्ष्मी॥
  - 4) क्रोधाग्नि .....  
..... मैं व्यस्त हूँ।
  - 5) हे पूज्य .....  
..... मर्मज्ञ हो॥

### सामान्य ज्ञान विभाग-15

- प्रश्न 2. निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिये। 15
- 1) नवकारसी-सूत्र का पाठ लिखो?  
उत्तर .....
  - 2) महत्तरागारेणं का अर्थ लिखो?  
उत्तर .....
  - 3) प्रत्याख्यान पालने का पाठ लिखो?  
उत्तर .....
  - 4) ग्यारहवें पौषध व्रत में किन-किन का त्याग किया जाता है?  
उत्तर .....
  - 5) आलोयणा का प्रारंभिक एवं अंतिम दोहा लिखो?  
उत्तर 1. ....  
2. ....